पाक्षिक

परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक २४ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • दिसम्बर (द्वितीय) २०१८

क्योंकर बहाव रोकिये
पच्छम की बाढ़ का।
गंगा की रौ में बैठके
दिखला दिया कि यूँ।।

-पं. चमूपति

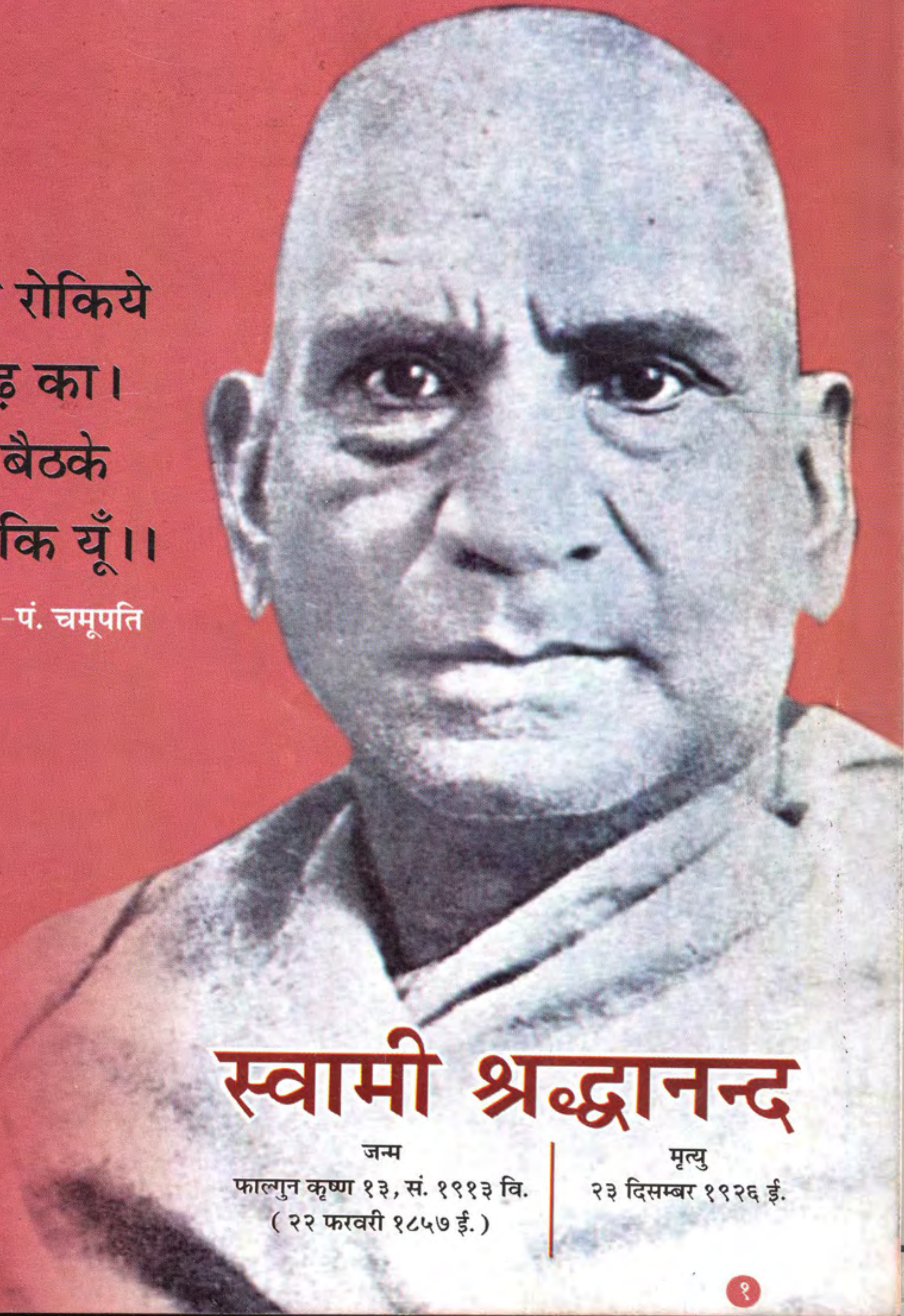

स्वामी श्रद्धानन्द

जन्म
फाल्गुन कृष्ण १३, सं. १९१३ वि.
(२२ फरवरी १८५७ ई.)

मृत्यु
२३ दिसम्बर १९२६ ई.

ऋषि मेला २०१८ में प्रथम दिवस के प्रथम सत्र की झलकियाँ

वर्तमान में गुरुकुलों की प्रासंगिकता

आचार्य विद्यादेव, अजमेर (अध्यक्ष)

आचार्य विजयपाल, झज्जर (मुख्य अतिथि)

आचार्या सूर्यादेवी 'चतुर्वेदा', गुरुकुल शिवगंज

आचार्य ओमप्रकाश, गुरुकुल आबू

आचार्या धारणा 'याज्ञिकी'

स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक, नर्मदापुरम्

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : २४

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: मार्गशीर्ष शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार
९८१८०७२१०८

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलाससमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः॥

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-२०	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. पुस्तक समीक्षा	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	१५
०५. ईश्वर का अभय संकेत	संजय मोहन मित्तल	१६
०६. महाभारत में दर्शन शास्त्र	आ. उदयवीर शास्त्री	१८
०७. आत्म-दर्शन की प्यास किसे?	स्वामी सत्यव्रतानन्द	२१
०८. शङ्का समाधान- ३९	डॉ. वेदपाल	२९
०९. प्रहलाद का उत्कृष्ट न्याय	शिवनारायण उपाध्याय	३१
१०. मेरी जीवनसंगिनी	स्वामी श्रद्धानन्द	३३
११. नारी-शिक्षा व गुरुकुल...	वेदारीलाल आर्य	३५
१२. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३७
१३. नारी उत्पीड़न	मोहनलाल तँवर	३८
१४. पं. भारतेन्द्र नाथ (महात्मा वेदभिक्षु)	सोमेश पाठक	४०

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

स्वामी श्रद्धानन्द

जिन्होंने 'मिस्टर गाँधी' को 'महात्मा गाँधी' बनाया

अनेक बार देखा गया है कि कुछ इतिहासकार किसी व्यक्ति या वृत्तान्त का मूल्यांकन स्वमनाग्रह के अनुसार करके उसे विशेष या गौण बनाने का प्रयास करते हैं; किन्तु कुछ अमिट प्रमाण ऐसे होते हैं जो मूक होते हुए भी सम्पूर्ण सत्य को उजागर कर देते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द, भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन और समाज सुधारकों के उन अग्रणी नेताओं में थे, जिनका स्थान प्रथम पंक्ति में था। जिन्हें इस तथ्य का प्रमाण अपेक्षित हो वे 'अमृतसर कांग्रेस' (१९१९) के उस चित्र को ध्यान से देखें जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द, पं. मोतीलाल नेहरू, पं. मदनमोहन मालवीय तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट के साथ कुर्सी पर विराजमान हैं और भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू उनके चरणों की पंक्ति में नीचे बैठे हुए हैं। स्वामी जी का व्यक्तित्व इतना महान् था कि गाँधी जी भी उनको चरणस्पर्श करके नमन करते थे।

जिस समय श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद, नस्लभेद और उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन कर रहे थे, उसी समयावधि में भारत में एक महात्मा अपना सर्वस्व त्यागकर विदेशी शिक्षा-प्रणाली, अस्पृश्यता, असमानता, जातिवाद, अशिक्षा, राजनीतिक पराधीनता, अन्धविश्वास, पाखण्ड आदि के विरुद्ध सामाजिक क्रान्ति कर रहे थे। उनका नाम था-महात्मा मुंशीराम (संन्यास नाम स्वामी श्रद्धानन्द), जो हरिद्वार के निकट कांगड़ी नामक गाँव में सन् १९०२ में गंगा तट पर स्वस्थापित 'गुरुकुल कांगड़ी' नामक शिक्षा संस्था के माध्यम से भारतीय संस्कृति-सभ्यता की संरक्षा, प्रचार-प्रसार जैसे राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न थे। दक्षिण अफ्रीका में श्री गाँधी का नाम और काम सुर्खियों में था तो भारत में महात्मा मुंशीराम का। दोनों अपने-अपने देश में सामाजिक सेवा एवं सुधार में संलग्न थे, किन्तु एक का दूसरे से न तो साक्षात् परिचय था और न कभी मेल-मिलाप हुआ था। दोनों महापुरुषों का परस्पर साक्षात् परिचय और मेल-मिलाप कराने में सेतु का कार्य किया श्री गाँधी के मित्र प्रोफेसर सी.एफ. एंड्र्यूज ने। प्रोफेसर एंड्र्यूज सेंट स्टीफेंस कॉलेज, दिल्ली में शिक्षक थे और दोनों के सुधार-कार्य से प्रभावित थे। उन्होंने श्री गाँधी को लिखे एक पत्र में परामर्श दिया था कि, ''आप जब भी दक्षिण अफ्रीका से भारत आयें तो भारत के तीन सपूतों से अवश्य मिलें।'' वे तीन व्यक्ति थे- महात्मा मुंशीराम, कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर और सेंट स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली के प्रिंसिपल श्री सुशील रुद्र (यंग इंडिया ०६-०१-१९२७)। श्री गाँधी महात्मा मुंशीराम के सामाजिक कार्यों से अवगत होकर अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका स्थित अपने 'फीनिक्स आश्रम, नेटाल' से दिनांक २१ अक्टूबर १९१४ को महात्मा मुंशीराम को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने महात्मा जी के कार्यों की प्रशंसा की और उनके प्रति श्रद्धाभाव से आत्मीयता व्यक्त करते हुए उनको 'महात्मा' एवं 'भारत का एक सपूत' लिखा तथा उनके चरणों में नमन करने हेतु मिलने के लिए अपनी अधीरता व्यक्त की। ये पत्र स्वामी श्रद्धानन्द के महान् और राष्ट्रनायक श्रद्धेय व्यक्तित्व की ओर इंगित करते हैं। श्री गाँधी द्वारा अंग्रेजी में लिखे उक्त पत्र की कुछ पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद है-

''प्रिय महात्मा जी,...मैं यह पत्र लिखते हुए अपने को गुरुकुल में बैठा हुआ समझता हूँ। निस्सन्देह उन्होंने मुझे इन संस्थाओं (गुरुकुल कांगड़ी, शान्ति निकेतन, सेंट स्टीफेंस कॉलेज) को देखने के लिए अधीर बना दिया है और मैं उनके संचालकों, भारत के तीनों सपूतों के प्रति अपना आदर व्यक्त करना चाहता हूँ। आपका-मोहनदास गाँधी''।

उसके पश्चात् दिनांक ८ फरवरी १९१५ को पूना से हिन्दी भाषा में लिखे एक पत्र में श्री गाँधी ने फिर लिखा-''महात्मा जी...आपके चरणों में सिर झुकाने

की मेरी उमेद है। इसलिए बिन आमन्त्रण आने की भी मेरी फरज समझता हूँ। मैं बोलपुर से पीछे फिरूं उस बावत आपकी सेवा में हाजर होने की मुराद रखता हूँ। आपका सेवक-मोहनदास गाँधी''

(उक्त दोनों पत्रों की मूल प्रतियाँ गाँधी संग्रहालय, दिल्ली में उपलब्ध हैं)

कुम्भपर्व के अवसर पर अपनी पत्नी कस्तूर बा के साथ यात्रा-कार्यक्रम बनाकर श्री गाँधी एक सामान्य कार्यकर्त्ता की तरह ५ अप्रैल १९१५ को हरिद्वार पहुँचे। छह अप्रैल को उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में पहुँचकर उसके संस्थापक महात्मा मुंशीराम से भेंटकर **उनके चरणों को स्पर्श कर प्रणाम किया।** यह दोनों की प्रथम भेंट थी। आठ अप्रैल को गुरुकुल कांगड़ी की कनखल स्थित-'मायापुर वाटिका' में गाँधी जी का सम्मान समारोह किया गया और एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया। जिसमें उनको प्रथम बार लिखित में 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित किया। वक्ताओं ने भी स्वागत करते हुए कहा कि 'आज दो महात्मा हमारे मध्य विराजमान हैं।' महात्मा मुंशीराम ने अपने सम्बोधन में आशा व्यक्त की कि अब महात्मा गाँधी भारत में रहेंगे और ''भारत के लिए ज्योति-स्तम्भ बन जायेंगे।'' महात्मा गाँधी ने आभार व्यक्त करते हुए कहा था कि **''मैं महात्मा मुंशीराम से मिलने के उद्देश्य से ही हरिद्वार आया हूँ। उन्होंने पत्रों में मुझे 'भाई' सम्बोधित किया है, इसका मुझे गर्व है। कृपया आप लोग यही प्रार्थना करें कि मैं उनका भाई बनने के योग्य हो सकूं। अब मैं विदेश नहीं जाऊँगा। मेरे एक भाई (लक्ष्मीदास गाँधी) चल बसे हैं। मैं चाहता हूँ कोई मेरा मार्गदर्शन करे। मुझे आशा है कि महात्मा मुंशीराम जी उनका स्थान ले लेंगे और मुझे 'भाई' मानेंगे।'' (सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय एवं हिन्दू १२. ०४. १९१५ अंक)**

इस भेंट ने दो समाज-सुधारकों को 'घनिष्ठ मित्र' और 'एक-दूसरे का भाई' बना दिया। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में इस अवसर पर दोनों महात्माओं के मेल से भारत में सामाजिक सुधार और राजनीतिक स्वाधीनता का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ जिसका सुखद परिणाम भारत की स्वतन्त्रता और शैक्षिक जागरूकता के रूप में सामने आया। गुरुकुल कांगड़ी के उक्त सार्वजनिक अभिनन्दन में श्री गाँधी को 'महात्मा' की उपाधि प्रदान करने के पश्चात् महात्मा मुंशीराम ने अपने पत्रों और लेखों में सर्वत्र उनको 'महात्मा गाँधी' के नाम से सम्बोधित किया। परिणामस्वरूप जन समुदाय में उनके लिए 'महात्मा' प्रयोग प्रचलित हो गया जो सदा-सर्वदा के लिए गाँधी जी की विश्वविख्यात पहचान बन गया। उससे पूर्व दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजी सभ्यता के अनुसार उनको 'मिस्टर गाँधी' कहा जाता था। **इस प्रकार 'मिस्टर गाँधी' गुरुकुल कांगड़ी आकर 'महात्मा गाँधी' बनकर निकले।** परस्पर का दोनों का पत्र-व्यवहार गुरुकुल कांगड़ी के पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित है।

इस भेंट के बाद श्री गाँधी और महात्मा मुंशीराम के संबन्धों में निकटता बढ़ती गई। उक्त प्रथम आगमन के अतिरिक्त गाँधी जी फिर तीन बार गुरुकुल कांगड़ी में पधारे। दूसरी बार १४ मार्च १९१६ को आये और गुरुकुल के अछूतोद्धार सम्मेलन तथा वार्षिक उत्सव में भाषण किया। तीसरी बार १९-२० मार्च १९२६ को गुरुकुल की रजत जयन्ती पर दीक्षान्त समारोह में उपस्थित होकर वक्तव्य दिया। चौथी बार २१ जून १९४७ को गुरुकुल में पधारकर गुरुकुलवासियों को आशीर्वाद देकर गये। गुरुकुल कांगड़ी में चार बार आने का महात्मा गाँधी का यह एक रिकॉर्ड है, क्योंकि इतनी बार वे भारत की किसी अन्य शिक्षा संस्था में नहीं गये। उनका मानना था कि **''गुरुकुल कांगड़ी तो गुरुकुलों का पिता है। मैं वहाँ कई बार गया हूँ। स्वामी जी के साथ मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है।''** (महादेव भाई की डायरी, खण्ड ७)

ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी के अभाव में या अन्य कारणों से कुछ लेखकों ने इस ऐतिहासिक वृत्तान्त से भिन्न कुछ अन्य धारणाएँ भी प्रचारित की हुई हैं। उनमें एक भ्रान्ति यह भी है कि 'श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने प्रथम बार श्री गाँधी को 'महात्मा' कहकर पुकारा था।' यह विचार बाद में प्रचलित किया गया है जो अनुमान पर आधारित कल्पना मात्र है। इसका कोई लिखित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्यों पर चिन्तन किया जाना आवश्यक है जो ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं-

१. 'महात्मा' शब्द का प्रयोग श्री गाँधी और महात्मा मुंशीराम के पारस्परिक लेखन और व्यवहार में प्रचलित था, श्री टैगोर के साथ नहीं। गाँधी जी मुंशीराम जी को महात्मा लिखते और कहते थे, प्रत्युत्तर में गाँधी जी से प्रभावित महात्मा मुंशीराम ने भी सम्मान देने के लिए गाँधी जी को 'महात्मा' कहा। परस्पर के व्यवहार में ऐसा शिष्टाचार स्वाभाविक ही है।

२. यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाये कि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सर्वप्रथम श्री गाँधी के लिए 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया। यदि ऐसा हुआ भी होगा तो वह व्यक्तिगत और ऐकान्तिक रहा होगा, सार्वजनिक रूप में प्रयोग और लेखन कविवर टैगोर की ओर से नहीं हुआ तथा न वह सार्वजनिक रूप में हुआ और न उनकी भेंट के बाद वह जनसामान्य में प्रचलित हुआ। यह प्रयोग सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप में महात्मा मुंशीराम की ओर से गुरुकुल कांगड़ी से आरम्भ हुआ, जिसे अपने अनेक पत्रों और लेखों के माध्यम से महात्मा मुंशीराम ने सुप्रसिद्ध किया। उसके पश्चात् ही जन-सामान्य में गाँधी जी के लिए 'महात्मा' प्रयोग का प्रचलन हुआ। गाँधी जी ने लिखा है-''जब कोई मुझे 'महात्मा' कहकर पुकारता है तो मुझे सन्देह होता है कि कहीं यह 'महात्मा मुंशीराम' को तो नहीं पुकार रहा है।''

३. केन्द्रीय सरकार के अभिलेखों में इसी तथ्य को स्वीकार किया गया है कि 'श्री गाँधी को सर्वप्रथम गुरुकुल कांगड़ी में 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित किया गया।' ३० मार्च १९७० को स्वामी श्रद्धानन्द (पूर्वनाम महात्मा मुंशीराम) की स्मृति में भारतीय डाक तार विभाग द्वारा डाक टिकट जारी किया गया था। विभाग द्वारा प्रकाशित डाक टिकट के परिचय-विवरण में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है-**''उन्होंने (स्वामी श्रद्धानन्द ने) कांगड़ी हरिद्वार में वैदिक ऋषियों के आदर्शों के अनुरूप एक बेजोड़ विद्या केन्द्र गुरुकुल की स्थापना की।...महात्मा गाँधी जब दक्षिण अफ्रीका में थे तो सर्वप्रथम इसी संस्थान ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया और भारत लौटने पर वे सबसे पहले वहीं जाकर रहे। यहीं गाँधी जी को 'महात्मा' की पदवी से विभूषित किया गया।''**

४. उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग द्वारा १९८५ में प्रकाशित और गाँधीवादी लेखक श्री रामनाथ सुमन द्वारा लिखित '**उत्तर प्रदेश में गाँधी**' नामक पुस्तक के 'सहारनपुर सन्दर्भ' शीर्षक में उल्लेख है कि '**हरिद्वार आगमन के समय गाँधी जी को गुरुकुल कांगड़ी में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने महात्मा विशेषण से सम्बोधित किया था, तब से गाँधी जी 'महात्मा गाँधी' कहलाने लगे।**'

५. गाँधी जी के गुरुकुल कांगड़ी आगमन के समय वहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने अपने संस्मरणों में, गुरुकुल के स्नातक इतिहासकारों ने अपने लेखों और पुस्तकों में श्री गाँधी के प्रथम सम्मान-समारोह का और उस अवसर पर उन्हें 'महात्मा' पदवी दिये जाने का वृत्तान्त दिया है। प्रसिद्ध पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार ने लिखा है-**''आज गाँधी जी जिस महात्मा शब्द से जगद्विख्यात हैं, उसका सर्वप्रथम प्रयोग आपके लिए गुरुकुल की ओर से दिए गए इस मानपत्र में ही किया गया था।''** (महात्मा गाँधी और गुरुकुल, पृष्ठ ४८१) इस वृत्तान्त को लिखने वाले अन्य स्नातक लेखक हैं-डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालङ्कार, इतिहासकार डॉ. सत्यकेतु विद्यालङ्कार, श्री दीनानाथ विद्यालङ्कार, श्री जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार और डॉ. विष्णुदत्त राकेश आदि। कोई कारण नहीं कि विद्यार्थी अपने संस्मरणों को तथ्यहीन रूप में प्रस्तुत करें। अतः ये विश्वसनीय वृत्तान्त हैं।

६. श्री गाँधी और महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) दोनों एक-दूसरे के महात्मापन के कार्यों से पहले से ही सुपरिचित थे, इसलिए दोनों के व्यवहार में आत्मीयता और सहयोगिता का खुलापन था। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ श्री गाँधी का वैसा खुला अनौपचारिक सम्बन्ध नहीं था। दोनों के निकट सम्बन्धों की पुष्टि तीन विशेष घटनाओं से होती है। पहली घटना वह है जब सन् १९१३-१४ में दक्षिण अफ्रीका में चल रहे श्री गाँधी के सामाजिक आन्दोलन के लिए १५००/- की आर्थिक सहयोग राशि राष्ट्रनेता श्री गोपालकृष्ण गोखले के माध्यम से गुरुकुल कांगड़ी के द्वारा भेजी गई थी। **यह राशि गुरुकुल के विद्यार्थियों ने, सरकार द्वारा सन् १९१४ में गंगा पर**

बनाये जा रहे 'दूधिया बाँध' पर दैनिक मजदूरी करके और एक मास तक अपना दूध-घी त्याग कर उसके मूल्य से एकत्रित करके भेजी थी। इस मार्मिक घटना को सुनकर गाँधी जी का हृदय द्रवित हो गया था। उन्होंने अनेक लेखों में इस सहयोग की चर्चा की है।

दूसरी घटना यह थी कि सन् १९१५ में जब श्री गाँधी दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर भारत आ रहे थे तो उन्होंने वहाँ स्वस्थापित 'फीनिक्स आश्रम, नेटाल' के विद्यार्थियों को पहले ही भारत में श्री टैगोर के आश्रम में भेज दिया था। श्री टैगोर के आश्रम शान्ति निकेतन (तत्कालीन नाम ब्रह्मचर्याश्रम) में उनके निवास एवं खान-पान का प्रबन्ध सुचारु रूप से नहीं हो सका। तब गाँधी जी ने उन विद्यार्थियों को महात्मा मुंशीराम के पास गुरुकुल कांगड़ी में भेज दिया। वहाँ वे अच्छे प्रबन्ध के साथ दो महीनों तक रहे। जब गाँधी जी गुरुकुल में प्रथम बार पधारे थे तो उन्होंने अपने वक्तव्य में उक्त दोनों सहयोगों के लिए महात्मा मुंशीराम और विद्यार्थियों के प्रति आभार व्यक्त किया था।

तीसरी घटना यह है कि स्वामी श्रद्धानन्द की २३ दिसम्बर १९२६ को एक मुस्लिम हत्यारे अब्दुल रशीद के द्वारा हत्या होने के पश्चात् ९ जनवरी १९२७ को गाँधी जी बनारस गये। वहाँ गाँधी जी और श्री मदनमोहन मालवीय जी ने, स्वामी श्रद्धानन्द के सिद्धान्तों के अनुकूल न होते हुए भी, अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करने के लिए उनके लिए गंगा में जलांजलि प्रदान की और गंगा-स्नान किया।

पाठक उक्त घटनाओं से अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय के राष्ट्र नेताओं का स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति कितना श्रद्धाभाव था और उनके परस्पर कितने गहरे सामाजिक सम्बन्ध थे। स्वामी जी द्वारा श्री गाँधी को 'महात्मा' पद का सम्मान दिये जाने के बाद दोनों की घनिष्ठता और बढ़ती गई तथा महात्मा गाँधी का अपने प्रेरणा स्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में आगमन निरन्तर होता रहा। भारत का इतिहास इस तथ्य से परिचित है कि स्वामी श्रद्धानन्द के कहे अनुसार आगे चलकर महात्मा गाँधी 'भारत के ज्योति-स्तम्भ' भी बने।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

डॉ. सुरेन्द्र कुमार को राष्ट्रभाषा सम्मान

डॉ. सुरेन्द्र कुमार पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार एवं सम्पादक 'परोपकारी' पत्रिका, को दिनांक १ दिसम्बर २०१८ को चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय भिवानी (हरियाणा) में 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और मानवीय मूल्यों के संवर्धन के लिए समर्पित भाव से कार्य करने हेतु' सम्मानित किया गया। चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, हरियाणा सरकार ग्रन्थ अकादमी और अन्तरराष्ट्रीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में कुलपति प्रो. राजकुमार मित्तल और जयपुर विश्व. के कुलपति प्रो. जगदीश प्रसाद ने यह सम्मान प्रदान किया। इस अवसर पर डॉ. हरीश कुमार (आईपीएस) अतिरिक्त महानिदेशक हरियाणा पुलिस तथा डॉ. वाचस्पति कुलवंत पूर्व उपकुलपति पतंजलि विश्व. को भी इसी सम्मान से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संयोजन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. बाबूराम ने किया।

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

(स. प्र. भू.)

मृत्यु सूक्त-२०

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

**मृत्यो पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः।।**

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। - सम्पादक

हम इस वेद-ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में ऋग्वेद के दसवें मंडल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। जैसे हमने पीछे की चर्चा में देखा है, मनुष्य को मृत्यु से भय लगता है इसलिए यहाँ पर कहा, **मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत**। जो मृत्यु है उसका भय हमारे अन्दर से कैसे दूर हो? हमारे अन्दर से भय दूर होने का उपाय यह है कि हमारी समझ में यह आना चाहिए कि आत्मा नित्य है और यह कभी मरता नहीं है। मृत्यु केवल मृत्यु नहीं है। मृत्यु अधूरा शब्द है, यदि उसके साथ जन्म न हो तो। यदि हमको यह अनुभव में आ जाए, यह मस्तिष्क में बैठ जाए कि जन्म-मृत्यु का परिणाम है, तो मृत्यु से भय हट सकता है। इसलिए हमको यह समझ में आना चाहिए कि हमारा वर्तमान का जन्म पुरानी मृत्यु के परिणामस्वरूप है। यदि हम वहाँ मरे नहीं होते तो हमारा यह जन्म नहीं हुआ होता।

शरीर को बार-बार बदलना, इसको हम जन्म और इसको छोड़ने को मृत्यु कहते हैं। शरीर को ग्रहण करना जितना स्वाभाविक है अगर यह समझ में आ जाए तो इसका छूटना कितना स्वाभाविक है यह हमारी समझ में सहज आ सकता है। शास्त्रों ने इसलिए जन्म को, पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए बहुत सारे उद्धरण, युक्तियाँ, प्रमाण दिए हैं। आयुर्वेद विज्ञान में इसको बड़े विस्तार से और बड़े क्रम से समझाया है। वो कहते हैं कि संसार में पुनर्जन्म होता है, यह कैसे सिद्ध करेंगे? कौन मानेगा? कैसे मानेगा? तो वे कहते हैं कि जो पुनर्जन्म को मानने वाले हैं, पहले उनको देख लो कि वो कौन-कौन हैं, क्या-क्या मानते हैं। एक जो शून्यवादी हैं, नास्तिक हैं, उनका कहना है कि कोई जन्म नहीं होता, यह तो ऐसे ही पैदा हो गए हैं, ऐसे ही मर जायेंगे। न पहले इनका कुछ था, न बाद में इनका कुछ है। और जो मानते हैं कि नहीं-यह किसी कारण से हुए हैं और वो कारण होगा तो ये जन्म भी होगा, इसका विवेचन करते हुए उन्होंने कहा- **मातरं पितरं चैके मन्यन्ते जन्मकारणम्, स्वभावं परनिर्माणं यदृच्छां नियतिं तथा**, यह पंक्ति बिल्कुल वैसी ही है जो सृष्टि की उत्पत्ति के कारणों में निर्दिष्ट है।

हमने पीछे चर्चा की थी कि यह सृष्टि परमेश्वर के द्वारा बनी और हमने वहाँ देखा था कि इस संसार का कारण क्या-क्या संभावित है और उनमें से कौन ठीक है और कौन गलत है। वहाँ हमने उपनिषद् के एक प्रसंग को उद्धृत करते हुए बताया था-कुछ लोग जो स्वभाव को, गुणों को, आकस्मिकता को, संयोग को इस सृष्टि का कारण बताते हैं, वैसी ही स्थिति यहाँ शरीर के लिए कही गई है। वो कहते हैं, कुछ लोग तो यह मानते हैं कि मनुष्य का जन्म माता-पिता के कारण होता है। यह इसका उपादान शरीर माता-पिता से प्राप्त है, लेकिन इसका जो आत्मत्व है, चेतना है, मन है, बुद्धि है इन्द्रियाँ हैं, क्या वो भी माता-पिता से प्राप्त हैं? तो हम देखेंगे कि ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि शरीर से तो शरीर बना है लेकिन आत्मा से आत्मा नहीं बना, इन्द्रियों से इन्द्रियाँ नहीं बनीं, मन से मन नहीं बना। जो कहते हैं-**मातरं पितरं चैके मन्यन्ते जन्मकारणम्**, कुछ लोग माता-पिता को जन्म का आधार मानते हैं, उनका विचार है कि यह शरीर भी, मन भी, बुद्धि भी, आत्मा भी सब माता-पिता से प्राप्त होता है। शरीर से शरीर का अंश प्राप्त हुआ, इसलिए इसके गुण, कर्म, स्वभाव हमको मिलते हैं। शरीर के रोग हैं, लाभ हैं, स्वास्थ्य है, अस्वास्थ्य है वो हमें माता-पिता से मिलता है। लेकिन इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, आत्मा मिलता है ऐसा नहीं है, यदि ऐसा होता तो एक संकट खड़ा हो जाता और वो संकट क्या होता? आत्मा के टुकड़े करने पड़ते, या पूरा आत्मा आता। यदि एक माता के दो, चार, छः, दस

सन्तान हैं, तो दस बच्चों में कम से कम दस आत्मा तो है, दसों के शरीर में इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है, यदि ये माना जाए कि माता-पिता से आए हैं तो क्या उनके मन, आत्मा, बुद्धि, इन्द्रियों के खण्ड/टुकड़े हो गए? इन चीजों का खंड तो हो नहीं सकता, आत्मा का टुकड़ा तो नहीं हो सकता। और यदि पूरी आत्मा का, दूसरे के शरीर में संक्रमण मान लिया जाए तो पहला मर जाएगा, बिना आत्मा का हो जाएगा। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि आत्मा न तो खंडित होता है, न संक्रमित होता है। संक्रमित तो शरीर के पदार्थ होते हैं और यदि मान लें कि माता-पिता से होता है-

'आत्मा मातुः पितुर्वायः सोऽपत्यं यदि संचसेत्,
द्विविधं संचरेत् आत्मा सर्वो वाऽवयवेन वा'।
सर्वश्चेत् संचरेण मातुः पितुर्वा मरणं भवेत्,
ना अस्ति अवयव आत्मनः।

तो आप यह देखेंगे कि आत्मा माता-पिता का है, लेकिन वो संतान में संक्रमित नहीं होता, क्योंकि सन्तान के पैदा होने से माता-पिता की मृत्यु भी नहीं होती, न एक की होती न दोनों की होती, न आत्मा का खंड होता। आत्मा का खंड संभव नहीं है, तो इसलिए यह माता-पिता से तो नहीं आया। दूसरे कहते हैं, स्वभाव से हो जाता है। स्वभाव जो है, वह एक ही दिशा में जाता है, लेकिन अच्छा भी, बुरा भी वह दोनों तरह का नहीं हो सकता। वो पाप भी, पुण्य भी दोनों तरह का नहीं हो सकता। इसलिए निर्माण और विनाश दोनों प्रक्रियायें चल रही हैं, यह कहना कि अपने आप बनने का स्वभाव है, इसलिए बन जाएगा तो क्या एक ही वस्तु में बनने का, बिगड़ने का, दोनों स्वभाव रहते हैं स्वभाव तो एक ही तरह का चलता है। इस दृष्टि से स्वभाव को भी इसका कारण नहीं माना।

इसी तरह से **'यदृच्छा'** अकस्मात् हो जाना, भाग्य से बन जाना, वह भी तार्किकता नहीं है, क्योंकि यहाँ व्यवस्था है, नियम है, हर चीज का उचित और अनुचित का संबन्ध है। एक तर्क और दिया है **'परनिर्माण'**-इसे कोई दूसरा बनाता है। दूसरा कोई बनाता तो नहीं है, हाँ आप व्यवस्था करने की दृष्टि से कहो तो ईश्वर इस संसार का व्यवस्थापक तो है और उसकी व्यवस्था से ही यह जन्म-मृत्यु आदि हो रहे हैं। इस दृष्टि से कोई आदमी यह सोचे कि यह जन्म आकस्मिक है, यूँ ही हो गया है, इसका कोई कारण नहीं है, ऐसा नहीं है। इसको हम सिद्ध कैसे करेंगे?

यह जो मानने वाले लोग मान रहे हैं वो गलत क्यों है, जो ठीक है वह ठीक क्यों है? इसके लिए चरक शास्त्र ने ४ युक्तियाँ दी हैं। वो **आप्तोपदेश** को प्रथम लेते हैं। आप्तोपदेश प्रमाण है, शब्द प्रमाण के रूप में हम देखते हैं। वो कहते हैं कि हम संसार की चीजों को जो देखते हैं, उनको चार तरह से देखकर समझते हैं। एक तो हम यह देखते हैं कि बड़े लोग क्या कहते हैं, शास्त्र क्या कहते हैं, विचारक लोग क्या कहते हैं, विद्वान् लोग क्या कहते हैं। उनके कहे को प्रमाणित होते हुए देखते हैं, औचित्य देखते हैं तो यहाँ भी हमको समझ आ जाता है कि वो ठीक कह रहे हैं।

शास्त्र देखने से पता लगता है कि वो पुनर्जन्म को मानते हैं और पुराने संस्कारों के कारण से, पुराने कर्मों के कारण से हमें एक विशेष जन्म प्राप्त होता है। इस दृष्टि से आप्तोपदेश के माध्यम से देखा जाता है कि संसार में जो भी प्राणी उत्पन्न हुए हैं वो आकस्मिक नहीं हैं। एक व्यवस्था में पैदा हो रहे हैं और इसको हम संसार में अपने सामने अनुभव भी करते हैं। अनुभव प्रत्यक्ष का विषय है और वो अनुभव कैसे करते हैं, जिसको हमने विस्तार से पीछे बताया था। गीता के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए कि माता-पिता अच्छे हैं सन्तान बुरी है, माता-पिता बुरे हैं, सन्तान अच्छी है, और बुद्धि के साथ शरीर के अवयव हैं, रंग है, रूप है, स्मृति है, संस्कार हैं, बहुत कुछ तो न हमारे माता-पिता से मिलता है, न हमारे भाई-बहनों से परस्पर कुछ मेल खाता है। दोनों में ही कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत समानता हो सकती है, लेकिन अधिकांश में कोई सादृश्य नहीं मिलता।

जो चीज़ प्रतिदिन हम सामने देख रहे हैं उसको हम कैसे मना कर सकते हैं, उसका कैसे निषेध कर सकते हैं। इस तरह से देखने पर भी यह पता लगता है कि एक जन्म जो हो रहा है, उसका पीछे कोई कारण है जिसे हम मृत्यु कहते हैं। उस मृत्यु के कारण से हमें एक जन्म का अवसर मिलता है। तो जैसा हम देख रहे हैं वैसा ही अनुमान भी कर सकते हैं। हम लोगों को देखकर के जान सकते हैं कि ये हमें अनायास, अकस्मात् नहीं मिला है बल्कि इसके पीछे कोई कारण है, हेतु है। जैसे बाकि चीजों को होते हुए हम देखते हैं, इसमें भी देखते हैं। उसको यदि हम समझना चाहें और मृत्यु से भयभीत न हों तो हमें जन्म- मृत्यु के चक्र को समझना होगा।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

रण में उतरा आर्यवीर- परोपकारी द्वारा आर्यजगत् को एक उत्साही, लग्नशील और मेधावी नये आर्यवीर की प्राप्ति की शुभ सूचना दी गई। उस सुयोग्य आर्यवीर का नाम व अता-पता बताना तब उचित न जाना। आज उस मिशनरी भावना के आर्यवीर का आर्यजगत् को पूरा परिचय दिया जाता है। कहीं से इस युवक को तड़प-झड़प स्तम्भ पढ़ने को मिल गया। उसके परिवार के लोग एक भयङ्कर कुख्यात गुरु के मानने वाले हैं। युवक ने घर में वैदिक एकेश्वरवाद का डंका बजाना आरम्भ कर दिया। उसे डराया धमकाया गया, परन्तु वह वेद-मार्ग से पीछे नहीं हटा। उसके पंथ के लोगों ने पता लगा लिया कि यह युवक परोपकारी में एक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' नाम के लेखक का स्तम्भ कुछ तड़प-कुछ झड़प पढ़-पढ़कर इतना दृढ़ आर्यसमाजी बन गया है। इस युवक ने यहाँ आकर लेखक से भेंट करके विचार विमर्श, शङ्का-समाधान करना चाहा, परन्तु हर बार उसे आने से रोका गया। पं. लेखराम जी और पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के भी प्रेरक प्रसंग उसने पढ़े, वे सब उसे याद हैं। वह हमारे इन दोनों महापुरुषों के रंग में रंग चुका है। मुझ से भेंट भी हो चुकी है।

मैंने उसके जीवन का उद्देश्य पूछा तो तपाक से उत्तर दिया, आपके सदृश पं. लेखराम के मिशन की सेवा करना मेरा उद्देश्य है। मैंने कहा, निरन्तर स्वाध्याय, सत्संग-सेवा करोगे तो कुछ बन जाओगे, चमकोगे। वह दिल्ली के समारोह में भी मिलने पहुँच गया। उच्च शिक्षित यह युवक खूब स्वाध्याय कर रहा है। अब उसका विरोध करने वाले समझ गये हैं कि वह दबने वाला, पीछे हटने वाला नहीं। उसको हरियाणा के कई आर्यवीरों के नाम पते बता दिये हैं। श्री अभय जी, श्री यतीन्द्र आर्य, श्री अनिल आर्य तथा श्री लक्ष्मण जी के साथ भावना से वह जुड़ चुका है।

वैदिक धर्म पर कोई प्रहार करे तो यह योद्धा डटकर लेखनी व वाणी से हर एक का उत्तर देने को हर घड़ी तैयार है।

बड़े-बड़े आर्यसमाजी विरोधियों का उत्तर देने से सकुचाते घबराते हैं। इस युवक ने हरियाणा के कृषक वर्ग विशेष रूप से जाटों को आर्यसमाज से काटने वालों के षड्यन्त्र को विफल करने के लिये अपनी धारदार लेखनी उठा ली है। गुरुप्रीत नाम के इस सूझबूझ वाले युवक ने **शान्तिधर्मी** मासिक में चौधरी छोटूराम जी के आर्यत्व व देश-प्रेम पर एक पठनीय उत्तम लेख दिया है। इस लेख को पढ़कर सब आर्य फड़क उठेगें। अभी तो रणभूमि में योद्धा उतरा है, शीघ्र हरियाणा के ही नहीं देशभर के आर्यजन स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस चरणानुरागी की सेवाओं पर गौरव करेंगे। यह योद्धा वीर लेखराम के नाम का ही भक्त नहीं- यह तो पं. लेखराम जी की ज्ञान-प्रसूता धारदार लेखनी लेकर मैदान में उतरा है। हमने उसे कहा, आप जैसे अनेक आर्यवीर चाहिये। उसने कहा, अब मैं अपनी युवा टोली को लेकर आप से मिलूँगा। वह अकेला नहीं, उसके साथ उस जैसे कई उत्साही आर्यवीर हैं। 'परोपकारी' ने श्री अभय आर्य के साथ अपना एक निर्भय आर्य और जोड़ दिया है।

लहलहाती है खेती दयानन्द की

वज़ीर और फ़कीर- एक जाति-घाती ने चौधरी छोटूराम जी के बारे में यह भ्रामक दुष्प्रचार छेड़ दिया कि चौधरी जी जीवन की साँझ में आर्यसमाज से जुड़ने के लिये पछताते थे। इस युवक ने तथ्य से, प्रमाणों से इस मिथ्या कथन का प्रतिवाद करके वाह! वाह!! लूटी है। इस संबन्ध में हम चौधरी छोटूराम जी के जीवन का एक अत्यन्त प्रेरक प्रसंग देते हैं। हरियाणा के एक-एक ग्राम में इतिहास की यह गौरवपूर्ण घटना आर्यों को प्रचारित करनी चाहिये।

चौधरी छोटूराम जी के निधन से थोड़ा समय पहले दीनानगर में चौधरी जी ने अपनी पार्टी का एक बहुत बड़ा किसान सम्मेलन रखवाया। चौधरी जी को सुनने के लिये और उनके दर्शन करने दूर-दूर से भारी भीड़-विशेष रूप से युवा वर्ग उस सम्मेलन में पहुँचा। श्री पं. निरञ्जनदेव जी इतिहासकेसरी भी उस दिन दीनानगर में ही थे। वह भी उस सम्मेलन में सम्मिलित हुये। सम्मेलन की समाप्ति पर

चौधरी जी को अपने अगले कार्यक्रम के लिये प्रस्थान करना था। सरकारी अधिकारी व पार्टी के लोग उनको अगले कार्यक्रम में ले जाने को तैयार हुये तो चौधरी जी ने सबको रोक कर कहा, ''अभी ठहरो। मुझे दयानन्द मठ में पूजनीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के दर्शन करने व आशीर्वाद लेने जाना है।''

चौधरी जी मठ के लिये चले तो भारी भीड़-विशेष रूप से युवा वर्ग पीछे-पीछे मुनि के तपोवन पहुँच गया। सौभाग्य से स्वामी जी उस दिन दीनानगर ही थे। चौधरी ने भक्तिभाव से कुटी में प्रवेश किया और दोनों की गम्भीर चर्चा होने लगी। जब चौधरी जी ने महाराज के चरण-स्पर्श कर विदाई ली तो सैकड़ों युवक जो कुटिया के बाहर खड़े थे, उन्हें स्वामी जी ने कहा, ''अच्छा! यहाँ वज़ीर को निकट से देखने के लिये आप आये। वहाँ वे भीड़ से दूर थे।''

इस पर उन युवकों के मुखिया एक लड़के ने कहा, ''नहीं महाराज! हम यहां वज़ीर के दर्शनार्थ नहीं आये। वज़ीर के तो वहीं जी भर कर दर्शन कर लिये। हम तो यहाँ उस फ़कीर के दर्शन करने आये हैं, जिसका आशीर्वाद लेने व दर्शन करने वज़ीर यहाँ आया।'' चौधरी छोटूराम जी की श्रद्धा, भक्तिभाव व धर्मभावना का यह दृश्य देखकर वे युवक भी भाव विभोर हो गये। राजनीतिक लोगों ने चौधरी छोटूराम जी पर बहुत कुछ लिखा, परन्तु उनके देशानुराग व धर्मप्रेम के प्रेरक प्रसंगों को इन लोगों ने छुआ तक नहीं। श्री पण्डित निरञ्जनदेव जी उस दिन की आँखों देखी एक-एक घटना जब सुनाते थे तो श्रोता झूम उठते थे। यह प्रसंग चौधरी जी के जीवन की साँझ का है। इसे पढ़ सुनकर कौन कह सकता है कि वे आर्यसमाज से जुड़ने पर पछताते थे। इस शरारतपूर्ण दुष्प्रचार का भण्डा फोड़ने के लिये हम उनके धर्मानुराग के बीसियों प्रसंग गिना सकते हैं।

श्रद्धाराम फिल्लौरी की एक पुस्तक- दिल्ली के एक प्रकाशक ने श्री पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी पर एक बड़ा ग्रन्थ प्रकाशित किया है। ग्रन्थ का लेखक साम्यवादी नास्तिक प्रतीत होता है। उसने पं. श्रद्धाराम की विद्वत्ता और धर्मानुराग की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनकी पुस्तक 'सत्यामृत प्रवाह' की तो विशेष रूप से प्रशंसा की गई है। इसमें श्रद्धाराम ने ईश्वर की सत्ता का निषेध तो किया ही है आत्मा की सत्ता का भी खण्डन किया है। यह जो ग्रन्थ दिल्ली के प्रकाशक ने छापा है इसका प्रयोजन श्रद्धाराम की बड़ाई करना नहीं है। यह तो महर्षि दयानन्द जी की निन्दा करने के लिये लिखी व प्रकाशित की गई है। महर्षि दयानन्द की निन्दा करते हुये कई निराधार गप्पें गढ़-गढ़कर परोसी गई हैं। इसके लेखक को हमने ज्ञान करवाया था कि श्रद्धाराम ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में ऋषि दयानन्द का गुणगान करते हुये बहुत भक्तिभाव से उन्हें एक पत्र लिखा था। वह पत्र आज भी अजमेर में सुरक्षित है। श्रद्धाराम के हाथ से लिखा वह पत्र उस कामरेड, बोगस गवेषक को देखने का निमन्त्रण भी दिया। उसने पत्र तो क्या देखना था- हमारे पत्र की प्राप्ति की सूचना भी न दी। हमने परोपकारी में उक्त ग्रन्थ के छपने पर कुछ लिखा भी।

श्रद्धाराम की एक और पुस्तक- जिस श्रद्धाराम को प्रकाण्ड पण्डित और अद्वितीय धर्मरक्षक सिद्ध किया जा रहा है, उसने अंग्रेज सरकार की आज्ञा से **दबिस्ताने मजाहब** फारसी ग्रन्थ का उर्दू अनुवाद किया। इस अनुवाद को सरकार ने ही छपवाया। समर्पित भी पंजाब के गवर्नर को सम्भवतः की गई। यह ग्रन्थ हमने देखा है। सिख इसे पढ़ें तो श्रद्धाराम की जान को रोयें। इसमें बहुत कुछ आपत्तिजनक है। वेद शास्त्र की महिमा में तो कुछ लिखा नहीं गया। मुसलमान लेखक ने धर्मशास्त्रों की जो जी भरकर निन्दा की है उस पर कोई पाद टिप्पणी भी नहीं दी। ईसाइयों की नौकरी करते हुये मिशन की सेवा के लिये पौराणिक आरती के रचयिता ने गोरी सरकार को यह ग्रन्थ तैयार करके दिया। पौराणिक हिन्दू तो आर्यसमाज की निन्दा करने और मूर्तिपूजा को महिमा-मण्डित करने को ही सनातन धर्म मानते हैं। सबकी आँखों के सामने अपने भाई-बन्धु विधर्मी होते जा रहे हैं। आर्य धर्म पर होने वाले एक-एक आक्रमण का उत्तर आर्यसमाज को ही देना है और किसी में यह हिम्मत कहाँ?

लेखराम जी के मौलिक तर्क व प्रमाण- कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर का प्रथम भाग छप चुका है। दूसरा भाग भी

प्रकाशनाधीन है। फरवरी-मार्च तक छप जावेगा। इस संस्करण की कई विशेषतायें हैं। पं. लेखराम जी के मौलिक तर्कों व प्रमाणों को स्थूल अक्षरों में देकर मुखरित तो किया ही गया है, साथ ही पाद टिप्पणियाँ देकर और देश-विदेश के ग्रन्थों के प्रबल प्रमाणों से पं. लेखराम के गहन चिन्तन व सूझ-बूझ की पुष्टि की गई है।

पं. लेखराम जी ने अन्धविश्वासों के खण्डन के लिये कई ऐसे तर्क दिये हैं जो संसार में प्रथम बार ही किसी विचारक ने दिये हैं। उत्पत्ति की पुस्तक में बाइबिल में आता है कि परमात्मा ने आदम (Adam) को बेहोश करके उसकी एक पसली निकाल कर हव्वा (Eve) को बनाया और आदम की जो पसली निकाली गई उसमें मांस भरा।

पं. लेखराम जी ने संसार में प्रथम बार इस पर ये प्रश्न उठाये-

१. तब वहाँ कोई चाकू छुरी तो था नहीं। मांस (operation) कैसे निकाला गया? लगता है परमात्मा ने अपने नाखूनों से मांस निकाला होगा और वहाँ कोई था ही नहीं।

२. आदम की पसली निकाल कर वहाँ मांस भरा गया। वह मांस कहाँ से आया? वह परमात्मा ने अपनी रान से निकाला होगा और कहाँ से? किससे मांस लिया? वहाँ था ही और कौन? एक आदम था और दूसरा परमात्मा था। मांस जो आदम के घाव में डाला गया वह परमात्मा ने अपने शरीर से ही निकाला होगा। परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा ही तो बनाया था। इस तर्क को किसी ईसाई ने आज तक नहीं झुठलाया।

ऐसे ही पुनर्जन्म तथा कर्मफल सिद्धान्त पर बाइबिल व कुरान से जो प्रमाण पण्डित जी ने निकाल कर दिये हैं वे अपने आप में अनूठे हैं। उनको झुठलाना भी किसी के बस की बात नहीं।

जीव व प्रकृति के अनादित्व पर पण्डित जी के तर्क तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ मुखरित करके इस ढंग से दी गई हैं कि पाठकों का ध्यान खिंच जावे और इनका अधिक से अधिक प्रचार हो। अन्य मत-पन्थों के साहित्य पर पण्डित जी के तर्कों की अमिट छाप को आर्यसमाज संसार के ध्यान में न ला सका। अब विश्व साहित्य से ऐसे प्रमाण खोज-खोज कर इस संस्करण में इस ढंग से दिये गये हैं कि पढ़ने वाले इनको प्रचारित करने के लिये मचल उठें।

स्वामी सर्वानन्द जी की एक भूल-- स्वामी सर्वानन्द जी की स्मरण शक्ति तथा सूझ-बूझ को उनके भक्त व प्रेमी भली प्रकार से जानते थे। उन्हें आर्यसमाज के इतिहास व सिद्धान्तों का अथाह ज्ञान था, परन्तु आप ने यह बहुत बड़ी भूल की जो अपने संस्मरण लेखबद्ध न किये। श्री पं. निरञ्जनदेव जी इतिहासकेसरी का तथा इस विनीत का यह मत रहा हे कि यह स्वामी जी की एक भयङ्कर भूल थी। वे आर्यसमाज के इतिहास की अनेक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं को जानते थे जिन्हें बहुत कम लोग जानते हैं। इन पंक्तियों का लेखक उनका साक्षात्कार लेकर उनके संस्मरण लिखता गया। इससे आर्यसमाज का बड़ा हित हुआ, परन्तु अपने आप स्वामी जी न तो अपने संस्मरण लिखते थे और सुनाते भी कम थे।

मालवीय जी ने लाहौर में एक दर्शन सम्मेलन की अध्यक्षता की। उसमें बड़े-बड़े दार्शनिक विद्वानों के सारगर्भित व्याख्यान हुये। स्वामी सर्वानन्द जी श्रोता के रूप में आगे-आगे मालवीय जी के सामने बैठे थे। तब मालवीय जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पं. ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य की ओर संकेत करते हुये तीन बार कहा, **''पण्डित हो तो ऐसा, पण्डित हो तो ऐसा, पण्डित हो तो ऐसा।''**

स्वामी जी ने यह महत्त्वपूर्ण संस्मरण दीनानगर मठ में अकस्मात् एक बार हमें सुनाया। इससे यह घटना सुरक्षित हो गई। यदि स्वामी जी इस सेवक को न सुनाते तो यह प्रेरक महत्त्वपूर्ण स्वर्णिम घटना इतिहास से लुप्त हो जाती।

ऐसे ही एक बार इस सेवक ने एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की चर्चा उनके सामने इसी प्रयोजन से छेड़ी कि आप कुछ विशेष घटना सुनायेंगे और ऐसा ही हुआ।

आपने बताया कि अपने बलिदान से कोई डेढ़-दो मास पहले स्वामी श्रद्धानन्द वच्छोवाली लाहौर समाज के उत्सव पर पधारे। तब अनारकली समाज में भी उनका प्रवचन हुआ। पं. रामचन्द्र जी (स्वामी सर्वानन्दजी) वेदी

के समीप आगे-आगे श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के ठीक सामने बैठे थे। स्वामी जी ने तब देवियों व पुरुषों से कहा, ''यह मेरी अन्तिम पंजाब यात्रा है। अब मेरा आपसे पुन: मिलन नहीं होगा। मेरी आपको अन्तिम नमस्ते है।''

स्वामी जी के मुख से यह घटना सुनकर मैं २५-३० वर्ष तक पुराने पत्रों व पुस्तकों में महाराज की अन्तिम लाहौर यात्रा के समाचार खोजता रहा, परन्तु स्वामी सर्वानन्द जी के कथन की पुष्टि में एक भी प्रमाण न मिला। हम यह तो जानते ही थे कि स्वामी जी की स्मरण शक्ति अद्‌भुत है और वे बहुत सत्यवादी हैं, उनका कथन मिथ्या नहीं हो सकता, परन्तु शङ्का करने वाले का मुख बन्द करने के लिये तत्कालीन किसी पत्र का प्रमाण तो चाहिये। २५-३० वर्ष के परिश्रम के पश्चात् 'पतितोद्धार' मासिक के जनवरी १९२७ के अंक में पं. गंगाराम जी के लेख में शब्दश: यह प्रसंग पढ़कर हम गद्‌गद हो गये फिर एक पुस्तक में भी इसका कुछ संकेत मिल गया।

अन्य मत पन्थों के लोग अपने गुरुओं के जीवन के ऐसे प्रसंग बहुत सुरक्षित रखते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी को अपनी मृत्यु का ऐसा पूर्वाभास कोई साधारण घटना तो है नहीं। न जाने ऐसी कितनी घटनायें स्वामी सर्वानन्द जी अपने सीने में ले गये। यह उनकी भूल थी जो संस्मरण न लिखे और न लिखवाये। कुछ पूछा तो बहुत ठोस सामग्री देते रहे।

आरम्भ में जिस गुरुप्रीत नाम के युवक की हमने चर्चा की है। उसने हमसे एक गम्भीर प्रश्न पूछ लिया। यह प्रश्न कभी किसी आर्य ने कभी नहीं पूछा। उसने शङ्का की कि वीर भगतसिंह व उसके साथियों की भूख हड़ताल के समय उनकी सहानुभूति में देशभक्तों ने जो सभा की, उसका अध्यक्ष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को क्यों बनाया गया? तब कई बड़े-बड़े राजनेता पंजाब में थे।

उन्हें इतिहास के प्रमाण देकर बताया कि गाँधी जी भगतसिंह आदि को हिंसक मानते थे। कांग्रेस के नेता गाँधी बापू के डर से उस सभा का अध्यक्ष कैसे बन सकते थे। इसलिये सबकी दृष्टि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पर पड़ी। वे अध्यक्ष क्या बने, कुछ ही दिन में समाज मन्दिर जाते समय बन्दी बना लिये गये। कई दोष लगाकर लम्बा केस चलाया गया। गवर्नर की हत्या का षड्यन्त्र रचने का भी दोष लगाया गया। आर्यसमाज में कौन यह स्वर्णिम इतिहास सुनाता है। यह हमारी भूल है कि हम अपने बलिदानी नेताओं के प्रेरक इतिहास का मूल्याङ्कन नहीं कर पाये।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

-संपादक

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (**PAROPKARINI SABHA AJMER**)

१. बैंक बचत खाता (**Savings**) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (**Savings**) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

पुस्तक समीक्षा

मृत्यु संबन्धी रहस्यों के उद्घाटन का प्रयास

पुस्तक का नाम- मृत्यु का स्वरूप

लेखक- श्री कन्हैयालाल आर्य (मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर)

पृष्ठ संख्या- १८७

मूल्य- १००रुपये

प्रकाशक- चन्द्रावती आर्या वैदिक धर्म प्रकाशन, ४/४४, शिवाजी नगर, गुरुग्राम (हरियाणा)-१२२००१

शिक्षित हो या अशिक्षित, विद्वान् हो या अविद्वान्, बलिष्ठ हो या दुर्बल, राजा हो या रंक, मानव हो या मानवेतर प्राणी, मृत्यु के भय से सभी भयभीत दिखाई पड़ते हैं और जन्म से चमत्कृत मिलते हैं। जन्म और मृत्यु के प्रति मानव की स्वाभाविक जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। सभी समुदायों में उनके चिन्तकों ने इन जिज्ञासाओं का समाधान भी अपनी-अपनी धारणा के अनुसार प्रस्तुत किया है। प्राप्त समाधानों में वैदिक शास्त्रों के समाधान अधिक तर्कपूर्ण, तथ्यात्मक, विश्वसनीय और व्यावहारिक हैं। उन्हीं सिद्धान्तों को आधार बनाकर श्री कन्हैयालाल आर्य ने इन रहस्यों का समाधान उपस्थित करने का एक प्रयास अपनी उक्त पुस्तक में किया है। पुस्तक में, जन्म-मृत्यु विषयक प्राय: सभी पक्षों का समाहार करके उनका विवेचन किया है। समस्त सामग्री को निम्नलिखित अध्यायों में विभाजित करके सम्बन्धित जिज्ञासाओं पर अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है-

मृत्यु क्या है?, मृत्यु जीवन का अटल सत्य है, अज्ञान और आश्चर्य कि हम नहीं मरेंगे, मृत्यु-एक चेतावनी, मृत्यु पर शोक क्यों? मृत्यु का स्वरूप, आत्मा का निवास शरीर, मृत्यु के स्मरण से प्रेरणाएँ, काल-अकाल मृत्यु-विचार और कारण, मृत्यु से बचाव के उपाय, मृत्युविषयक भ्रान्तियाँ आदि। विशेष बात यह है कि लेखक ने अपने कथनों की पुष्टि के लिए वैदिक-साहित्य, संस्कृत-साहित्य और हिन्दी-साहित्य के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। उनसे लेखक के विचारों को एक आधार प्राप्त होता है।

उक्त विवेचित विषयों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि लेखक ने प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित अधिकांश रहस्यों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से समीक्ष्य पुस्तक साधारण से विशेष, सभी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

लेखक श्री कन्हैयालाल जी आर्य को पुस्तक लेखन के लिए शुभाकांक्षा एवं साधुवाद है।

-सम्पादक

कल्पित संन्यासी

जब ऐषणा ही नहीं छूटी तो संन्यास क्योंकर हो सकता है? पक्षपात रहित सत्योपदेश से जगत् का कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। अब अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुन: संन्यासादि नाम धरना व्यर्थ है। नहीं तो, जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहे, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। जब लों वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब लों आर्य्यावर्त और अन्य देशस्थ मनुष्यां की वृद्धि नहीं होती।

(स. प्र. स. ११)

ईश्वर का अभय संकेत

संजय मोहन मित्तल

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ अथर्व १९.१५.५
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ अथर्व १९.१५.६

अथर्ववेद के इन दो प्रसिद्ध मन्त्रों में परमपिता परमेश्वर ने हमें अभय रहने का मार्ग सुझाया है। ये मन्त्र कह रहे हैं कि हम भयमुक्त हो जाएँ। किसी भी अवस्था में हमें कोई भय न लगे। तीनो लोकों (पृथिवी, अन्य ग्रह नक्षत्र आदि व उनके बीच का स्थान) में और तीनो लोकों से हमें कोई भय न हो। किसी दिशा से भी हमें कोई भय न हो। जो मित्र हैं और जो अभी मित्र नहीं हैं, उनसे भी कोई भय न हो। हमें जो ज्ञात है और जो अभी प्रत्यक्ष नहीं है, उससे भी कोई भय न हो। अन्धकार अथवा उजाले की अवस्था में भी कोई भय न हो। ध्यान देने योग्य बात है, इस मन्त्र में मित्र और अमित्र का प्रयोग। मित्र से भय उस स्थिति में हो सकता है जब वह आपका कोई ऐसा रहस्य जानता हो जिसके उजागर होने पर आपको हानि हो या लज्जा का सामना करना पड़े। इस मन्त्र में मित्र का विपरीत कोई शत्रुसूचक शब्द नहीं है, मात्र अमित्र ही कह दिया गया है। अर्थात् इस जगत् में किसी को भी शत्रु की दृष्टि से न देखें। हर कोई या तो मित्र है अथवा मित्र बनना शेष है।

भावार्थ में ये मन्त्र कह रहे हैं कि हम इतने निडर हो जाएँ कि कोई भी कर्म करते हुये हमें भय का आभास भी न हो। वाणी से निडर होकर बोलें। मुख से निःसंकोच भोजन ग्रहण करें। नासिका से स्वच्छन्द श्वास लें। आँखों से बिना भय के देखें। कानों से बिना भय के सुनें। हाथों से बिना भय के कर्म करें और पैरों से बिना भय के गन्तव्य पर जाएँ।

परन्तु इतना भयमुक्त कोई होगा कैसे? इसकी कुंजी या कहें तो संसार में सारे सुखों की कुंजी इन्हीं मन्त्रों में ही है। मन्त्रों के अन्त में लिखा है **''सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु''**, जीवन की सब दिशाएँ, सब पहलू मेरे मित्र हो जाएँ । सब मित्र हों तो फिर भय कैसा! परन्तु सब मित्र बनेगें कैसे? मित्रता तो सदा दोतरफा होती है । सबसे मित्रता की अपेक्षा करने से पहले मुझे स्वयं उनसे मित्रवत् व्यवहार करना पड़ेगा । मित्रता का पहला नियम है कि मित्र मित्र को हानि नहीं पहुँचाता, सदैव मित्र के लाभ की ही सोचता है । जब मैं स्वार्थ भाव से उपर उठ, सबको अपना मित्र मान, अपने सभी कर्म सर्वहितकारी यज्ञ की भावना से करूँगा तो मेरा अन्तःकरण मुझे कर्म करने से नहीं रोकेगा और मैं भयमुक्त हो जाऊँगा।

न्यू जर्सी, अमेरिका

परमेश्वर सगुण व निर्गुण है

परमेश्वर सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार है। जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है, कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें केवल निर्गुणता व केवल सगुणता हो। किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणोंसे सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

(स.प्र.स.७)

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुन: प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अत: ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

महाभारत में दर्शन शास्त्र

आचार्य उदयवीर शास्त्री

मूलरूप में महाभारत एक परिवार के पारस्परिक संघर्ष का विवरण मात्र है। कुरु एक राजवंश है, इस आधार पर वह समस्त परिवार 'कौरव' कहा जाता है। पर दो भाइयों की सन्तानों में व्यावहारिक विभेद के लिए पिता के नाम पर पुत्र 'पाण्डव' अर्थात् पाण्डु की सन्तान नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस भूभाग पर इनका शासन था, उसका नाम कुरुदेश है। इस देश का शासक होने से राजवंश 'कुरु' कहलाया, अथवा इस वंश के किसी पूर्वज का नाम 'कुरु' था, उसके द्वारा सर्वप्रथम अधिशासित होने के कारण यह भूभाग कुरुदेश बना, इसका निश्चयात्मक विवरण देना कठिन है। पर यह किसी सीमा तक निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस वंश के दो भाइयों की सन्तानों में प्रदेश के शासन-निमित्त संघर्ष हुआ, उसी का विस्तृत उल्लेख महाभारत का मूलरूप है।

कहा जाता है, इस संघर्ष या युद्ध आदि का विवरण मूल रूप में, सत्यवती-सुत कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने काव्यरूप में लिपिकार गणेश जी द्वारा लिपिबद्ध कराया। जब इसी को अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय द्वारा किये गये एक सत्र के अवसर पर वैशम्पायन व्यास शिष्य ने सुनाया, तब इसमें कुछ वृद्धि कर दी गई। कालान्तर में इसी की कथा नैमिषारण्य में यज्ञादि प्रसंगों के अवसर पर वहाँ एकत्रित हुए समाज को सौति नामक कथावाचक ने सुनाई। कहते हैं, उन अवसरों पर इस ग्रन्थ का कलेवर बहुत विस्तृत कर दिया गया। इसके अतिरिक्त, यह पूर्णरूप से संभव है कि अनेक अवसरों पर विभिन्न लेखकों द्वारा विविध प्रकार की ज्ञान-सामग्री का अन्तर्निवेश इस ग्रन्थ में होता रहा है, जिसका कोई लेखा-जोखा हमारे पास नहीं है। इसी के परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ विविध ज्ञान-विज्ञान का आगार बन गया है। तात्कालिक समाज ने इसे वेद के समान दर्जा दिया और इसे 'पाँचवाँ वेद' कहकर याद किया जाता रहा है, ऐसे ही आधारों पर एक कहावत बन गई है-

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

जो महाभारत में है, वही अन्य सब साहित्य में है और जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है। इसमें कुछ सच्चाई भी है। महाभारत की घटना के अनन्तर जितना लौकिक साहित्य लिखा गया है, उस समस्त के आधे से अधिक का उपजीव्य यही ग्रन्थ कहा जा सकता है। इस रूप में दार्शनिक विषयों का विवरण प्रस्तुत करने से भी यह ग्रन्थ वञ्चित नहीं रहा।

ग्रन्थ के अन्य भागों को अविवेच्य समझकर इस समय उनको छोड़ते हुए भी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थ के अनेक भागों में जो दार्शनिक विचार बिखरे हुए वर्णित हैं, उनमें से कितने या कौनसे सत्यवती-सुत वेदव्यास के लिखे हैं और कौनसे कालान्तर में विभिन्न विद्वानों द्वारा अन्तर्निविष्ट किये गये हैं।

महाभारत का 'गीता' एक ऐसा अंश है, जिसमें स्पष्ट रूप से दार्शनिक विचारों का उल्लेख हुआ है, सर्गादि की रचना और आत्म-तत्त्व का विवेचन ही दर्शन का रूप है, जो गीता में स्पष्ट अभिव्यक्त है। पर्याप्त काल से विद्वत्समाज व सर्वसाधारण जनता में इसकी मान्यता रही है। वर्तमान काल में इस प्रकार के साहित्य की तुलना से देखें, तो गीता का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, पर सर्वाङ्ग ज्ञान व प्रतिभा की दृष्टि से अपने आपको अधिक तेजस्वी समझने वाला समाज इसमें सन्देह उत्पन्न करता है कि गीता, सत्यवती-सुत कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की रचना है। तब महाभारत के अन्य दार्शनिक अंशों के विषय में निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह सब वेदव्यासोक्त है।

यह होते हुए भी हमारे सम्मुख वह महाभारत का ही अंश है, भले वह किसी का लिखा हो, हमें उसका व्यवहार इसी रूप में करना है। इस यथार्थ को दृष्टि में रखते हुए एक विवेच्य स्थिति सामने आती है कि महाभारत में जिन दार्शनिक विचारों का विवरण प्रस्तुत हुआ है, उनमें अद्वैत

तत्त्व का उल्लेख उस रूप में, जो आज उपलब्ध व ज्ञात है, नगण्य है अथवा नहीं है। वर्त्तमान ब्रह्मसूत्रों के रचयिता बादरायण=अपर नाम वेदव्यास हैं, तब इन सूत्रों को उन्हीं भावनाओं में समझने का प्रयास होना चाहिये, जो इस अर्थतत्त्व के आधार पर महाभारत में अभिव्यक्त हैं। अस्तु, इस अवसर पर महाभारत में वर्णित दार्शनिक विचारों का उल्लेख करना हमारा अभीष्ट है।

अधिक शाखाओं के रूप में दर्शन का उल्लेख महाभारत में उपलब्ध नहीं होता। अनेक स्थलों में प्रसंग के अनुसार ऐसे वर्णन अवश्य हैं, जिनको दर्शन की किसी शाखा का अंग मान लेने को विचारकों में उत्साह देखा जाता है। दर्शन की उपलब्ध शाखाओं में सर्वाधिक वर्णन सांख्य का है। उसके अनन्तर सात्त्वत दर्शन अथवा पञ्चरात्र दर्शन का उल्लेख हुआ है।

भौतिक दर्शन- यद्यपि चार्वाक् और बृहस्पति के नामों का उल्लेख महाभारत में है, परन्तु बार्हस्पत्य अथवा प्रसिद्ध चार्वाक् दर्शन के कोई संकेत महाभारत में उपलब्ध नहीं होते। गीता के सोलहवें अध्याय में, जहाँ आसुरी संपत् का वर्णन किया गया है, उस प्रसंग के आठवें पद्य में इस दर्शन के बीज निहित प्रतीत होते हैं, अगले श्लोक में इसको एक 'दृष्टि' बनाकर, इसके दर्शन रूप का संकेत अवगत होता है। दर्शन की इस विचारधारा के प्राचीन होने पर भी, चार्वाक अथवा बार्हस्पत्य दर्शन नाम से इनका वर्णन महाभारत में नहीं है।

संभव है, वैदिक समाज ने इस दर्शन के प्रभाव को क्षीण करने में प्रबल सहयोग दिया, जिससे कालान्तर में उसे सफलता मिली। महाभारत काल ऐसा ही था। शान्तिपर्व (३८) में प्रसङ्ग है-जब युधिष्ठिर ने नगर में प्रवेश किया और सैकड़ों वेदज्ञ ब्राह्मण उसके अभिनन्दन के लिये सन्नद्ध थे; उसी समय एक साधु वेषधारी **चार्वाक्** नामक व्यक्ति अकस्मात् वहाँ आकर धृष्टतापूर्वक घोषणा करता है कि मैं यहाँ एकत्रित ब्राह्मणों की भावना को अभिव्यक्त कर रहा हूँ कि इस राजा युधिष्ठिर को धिक्कार है, जिसने अपने जाति-जनों को नष्ट कर दिया। वहाँ उसे दुर्योधन का मित्र एक राक्षस बताया है। अन्त में सब ब्राह्मण उसके कथन का विरोध करते हैं और उसे समाप्त कर देते हैं। क्या इस प्रसंग का लेखक यह अभिव्यक्त करना चाहता है कि दुर्योधन के व्यवहार में अभिव्यक्त विशुद्ध भौतिकवादी विचारधारा के प्रतीक **चार्वाक्** को **समवहित** ब्राह्मणवर्ग ने तीव्र विरोध द्वारा अपने समाज से उच्छिन्न कर दिया।

कर्मण्यवादी दर्शन- इसी प्रकार शान्तिपर्व (१७७) में **मङ्कि** नामक एक प्राचीन मुनि का प्रसंग है। उसने घोर प्रयत्न कर कुछ धन जोड़ा और बड़े स्नेह से छोटे-छोटे दो बछड़े खरीद कर उन्हें पालना शुरू किया। वह मुनि उन दोनों बछड़ों को मजबूत रस्से से जोट लगाकर, उन्हें चरने के लिए छोड़ देता। एक दिन संयोगवश उनके सामने बैठे हुए ऊँट के इधर उधर से जोट में बँधे बछड़ों ने निकलने का प्रयास किया। जैसे ही वह जोट की रस्सी ऊँट की गर्दन के ऊपर आकर रगड़ी, ऊँट भड़भड़ाकर उठा, दोनों बछड़े इधर-उधर लटक गए। इस बवाल को न सहता हुआ ऊँट भागा। फलस्वरूप इधर-उधर लटकते दोनों बछड़े गला घुटने से मर गए। भागते ऊँट के पीछे तेजी से भागता मुङ्कि मुनि कह उठा-

'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम।'

इस दुर्दान्त दृश्य से मुनि का आत्मा बैठ गया। उसके समस्त जीवन के परिश्रम का फल, जैसे-तैसे जोड़ी संपत्ति इस घटना में नष्ट हो चुका था। उसने पूर्णरूप से निर्विण्ण होकर परिश्रम व पुरुषार्थ की विफलता और भाग्य की बलवत्ता की सराहना की। उसके इन विचारों का महाभारत के उक्त प्रसंग में वर्णन है। ये विचार '**मङ्कि-गीता**' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने इन विचारों को नियतिवादी, भाग्यवादी अथवा अकर्मण्यवादी ध्वनि का रूप देकर बुद्ध-काल के आस-पास होने वाले एवं बौद्ध साहित्य में वर्णित '**मंखलि गोशाल**' नामक व्यक्ति को ही मङ्कि के उपाख्यान रूप से महाभारत में वर्णित माना है। इस ढंग के महाभारतीय प्रसंगों में अभिव्यक्त विचारों को विविध दार्शनिक शाखाओं के रूप में उभारा जा सकता है।

सात्त्वत अथवा पञ्चरात्र दर्शन- श्रीकृष्ण के नामों में एक 'सात्त्वत' नाम भी है। शान्तिपर्व (अ. ३४२, श्लोक ७७-७८) में इसका निर्वचन देकर बताया है कि यह कृष्ण का नाम किस आधार पर है। पञ्चरात्र दर्शन के अनुसार

मूलभूत तत्त्व चार व्यूहों में अवस्थित बताया जाता है। वे चार व्यूह हैं-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध। ये क्रमशः परमात्मा, जीवात्मा, मन और अहंकार रूप हैं। पञ्चरात्र सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थ **अहिर्बुध्न्य संहिता** आदि में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। यह दर्शन, वर्तमान में प्रचलित वैष्णव दर्शन व सम्प्रदाय का उपजीव्य माना जाता है।

शान्तिपर्व के २२८ वें अध्याय में **जनदेव** नामक मिथिलाधिप **जनक** और **सांख्याचार्य पञ्चशिख** के संवाद का उल्लेख है। यहाँ ११ वें श्लोक में पञ्चशिख का वर्णन करते हुए उसका एक विशेषण '**पञ्चरात्रविशारद**' दिया गया है। इस दर्शन के सम्प्रति उपलब्ध साहित्य में इसकी जो रूप-रेखा समझी जाती है, साधारण रूप में उसके दो भेद हैं, एक-**दर्शनात्मक**, जिसमें जगद्रचना आदि का विवरण दिया जाता है। दूसरा-**उपासनाविधि** अथवा अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से पूजा-अर्चा का प्रकार। प्रथम के विषय में कुछ उल्लेख्य अपेक्षित है।

जैसा कि पूर्व कहा, जगद्रचना की दृष्टि से इस दर्शन में मूलतत्त्व को चार व्यूहों के रूप में अवस्थित माना गया है। इस दर्शन का महाभारत में उल्लेख शान्तिपर्व के कतिपय अध्यायों (द्रष्टव्य ३३९ तथा ३४८) में हुआ है। पूर्वाध्याय में चारों व्यूहों का विस्तृत विवरण है। इस प्रसंग के अध्ययन से प्रतीत होता है, उस समय इस दर्शन का स्वरूप कापिल सांख्य से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। वासुदेव-परमात्मा और संकर्षण-जीव के परस्पर विभेद का स्पष्ट उल्लेख किया गया है (२७-२८)।

प्रतिसर्ग का वर्णन करते हुए पृथिवी आदि का अपने-अपने कारणों में लय दिखाकर समस्त व्यक्त का अव्यक्त में लय बताया है, सर्ग-प्रतिसर्ग का यह क्रम संख्या प्रक्रिया से संतुलित होता है। अव्यक्त का वासुदेव-परमात्मा में लय कहकर बताया है कि यह समस्त विश्व वासुदेव-परमात्मा का शरीर रूप है। इसको त्रिगुणात्मक कहकर इसकी अव्यक्त अवस्था को 'मूर्त्तिविवर्जित' बताया है (५८)। इससे मूल उपादान का अकार्य होना स्पष्ट होता है। इसलिये जहाँ अव्यक्त का वासुदेव में लय कहा है, उसे औपचारिक ही समझना चाहिए। फलतः परमात्मा और प्रकृति संहित रूप में जगत् के कारण हैं, ऐसी मान्यता पञ्चरात्र दर्शन की प्रतीत होती है। अगले अध्याय में केवल एक व्यूह, दो व्यूह और तीन व्यूह मानने वाली शाखाओं का भी उल्लेख है (३४८/५७)। गंभीर विवेचन के फलस्वरूप यह असम्भव है कि वर्तमान वैष्णव सम्प्रदाय के दार्शनिक विभेदों का उपजीव्य, प्राचीन पंचरात्र का शाखाभेद रहा हो।

अनेक आधारों पर मेरी ऐसी धारणा है कि सात्त्वत दर्शन सम्बन्धी ये सब विवरण भारतयुद्ध-काल के पर्याप्त अनन्तर प्रस्तुत ग्रन्थ में समाविष्ट किये गये हैं।

सांख्य-योग दर्शन- इन दर्शनों की विचारधारा से समस्त महाभारत ग्रन्थ ओत-प्रोत है। किन्हीं भी अन्य दार्शनिक विचारों के प्रस्ताव में त्रिगुण एवं अन्तःकरण आदि का उल्लेख अनिवार्य रूप से देखा जाता है। मिथिलाधिप जनक राजाओं के दरबार में पञ्चशिख, सुलभा ब्रह्मवादिनी तथा अन्य अनेक आचार्यों के संवादरूप से इस दर्शन का विस्तृत उल्लेख महाभारत ग्रन्थ प्रस्तुत करता है, जहाँ पुरुष, त्रिगुणात्मक प्रकृति तथा सांख्यप्रक्रिया के अनुसार उसके विकारों एवं तत्सम्बन्धी अन्य मान्यताओं का अनेक प्रसंगों में वर्णन किया गया है। इन सब विचारों के लिये शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व द्रष्टव्य है।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

आत्म–दर्शन की प्यास किसे?

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती

खण्ड २

पिछले अंक का शेष भाग....

१. अथर्ववेद का ही एक मन्त्र है–**पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥** (अथर्व १०–८ –४३) इस मन्त्र की बड़ी सुन्दर व्याख्या स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ ने '**स्वाध्याय संदोह**' नामक ग्रन्थ में की है, हम उसे यथावत् प्रस्तुत कर रहे हैं–

व्याख्या–मानस–कमल को यहाँ एक गृह से उपमा दी गई है, तभी तो उसे '**पुण्डरीकं नवद्वारं**' कहा है। उपनिषद् में इस 'नवद्वार' विशेषण के कारण पुण्डरीक के साथ 'वेश्म' शब्द जोड़ दिया गया है, ताकि सन्देह ही न रहे तथा– "**अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म**" (छा. ८–१–१) =इस ब्रह्मपुर में छोटा सा कमल–समान जो मकान है, वह कमल–समान मकान '**त्रिभिर्गुणैरावृतम्**' तीन गुणों से घिरा है। सत्व, रज और तमस्, इन तीन गुणों ने मन को घेर रखा है और वह **नवद्वारं**=नौ दरवाजों वाला है। '**तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्**'=उस कमल समान मकान में आत्मा सहित यक्ष= पूजनीय परमात्मा रहता है। छान्दोग्य (छा. ८–१–१) में कहा "**तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्**"= उसके भीतर जो है, उसकी खोज करनी चाहिये। वेद कहता है, उसमें 'आत्मन्वत् यक्ष' है। वेद का आशय है कि हृदय– मन्दिर में आत्मा– परमात्मा दोनों रहते हैं। उपनिषदों में भी अनेक स्थानों पर 'गुहां प्रविष्टौ'= (हृदय–गुफा में प्रविष्ट हुए दोनों) शब्दों से यह अर्थ प्रतिध्वनित हुआ है।

२. 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' (ऋ. १–१६४–२०) ऋग्वेद के इस वचन में भी जीवात्मा और परमात्मा को साथ–साथ जुड़े हुए तथा सखा कहा है। सखा= जिनका ख्यान अर्थात् पता–ठिकाना एक हो, अतः जीवात्मा के साथ परमात्मा को लेना ही न्यायसंगत है।

कण्डिका ६

जीवात्मा और परमात्मा का स्वरूप

क. जीवात्मा=अणु परिच्छिन्न है।

ख. परमात्मा=विभु है।

खण्ड १

जीवात्मा के अणुरूप का उल्लेख वेदान्त दर्शन में आया है– "**उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्**" (वेदान्त. २–३–१९) अर्थात् उत् क्रान्ति = शरीर से निकलना, गति =चलना, आगति = शरीर में पुनः प्रवेश करना इत्यादि क्रियाएँ होने से जीवात्मा अणु है, अर्थात् सीमित होने से, एकदेशी होने से जीवात्मा शरीर में आना–जाना करता है। तो इस प्रकार सिद्ध हुआ कि जीवात्मा अणु है।

प्रश्न–अब प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि जीवात्मा एकदेशी है तो किस प्रकार से पूरे शरीर को चेतना प्रदान करता है? इसका बड़ा ही सुन्दर सटीक समाधान 'वेदान्त दर्शन' में महर्षि व्यास ने किया है– "**अविरोधश्चन्दनवत्**" (वेदान्त. २–३–२३)

अर्थात् अविरोध = कोई विरोध नहीं है, चन्दनवत्= चन्दन के समान होने से अर्थात् जिस प्रकार शरीर के किसी भाग में चन्दन लगाने से शरीर में सर्वत्र शीतलता का अनुभव होता है, उसी प्रकार जीवात्मा शरीर के एक देश में होने पर भी उसकी चेतनता पूरे शरीर में व्याप्त है, उस चेतनता के आधार पर ही सम्पूर्ण सुखदुःखादि का अनुभव करता है।

खण्ड २

परमात्मा के विभुरूप का उल्लेख– कठोपनिषद् में यमाचार्य कहते हैं "**अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।**" (कठ. २–२०) अर्थात् अणु से अति सूक्ष्म, बड़े से अधिक बड़ा परमात्मा इस, जन्तोः =जन्मधारी जीवात्मा के, गुहायाम् =हृदयप्रदेश में, निहितः =रखा हुआ, विद्यमान् है।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा है–**तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम्।**

तदन्तःसर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥

(महा. शान्ति. ६३-११३)

वह अणु से भी अणु और महान् से भी अत्यन्त महान् =महत्तर है। वह निश्चय ही समस्त प्राणियों के भीतर स्थित है, फिर भी किसी को दिखाई नहीं देता।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्याभिविनय में कहा है-"**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।**" (द्वितीय:प्रकाशः मन्त्र १२) अर्थात् "**तदन्तरस्य सर्वस्य**" किंच वह सबके आत्माओं के बीच में व्यापक अन्तर्यामी होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, सो आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि "**तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**" परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य, अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके बिना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सब में व्याप रहा है ।

यजुर्वेद भाष्य में भी देखिये-"**सऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥**" (यजुर्वेद ३२-८) अर्थात् वह (विभूः) विविध प्रकार व्याप्त हुआ प्रजाओं में ठाढ़े सूतों में जैसे वस्त्र तथा आढ़े सूतों में जैसे वस्त्र वैसे ओतप्रोत हो रहा है, वही सबको उपासना करने योग्य है।

कण्डिका ७

परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति का सम्बन्ध

खण्ड १.

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८६ में २३ मन्त्र हैं, जिसमें से यहाँ पर कुछ मन्त्र सार्थ दे रहे हैं। इस सूक्त के ऋषि-वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च हैं। वृषाकपि=जीवात्मा, इन्द्र=परमैश्वर्यशाली प्रभु तथा इन्द्राणी=प्रकृति। सूक्त का देवता इन्द्र है।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥२

अर्थात् हे ऐश्वर्यवन् प्रभु! तू तो परे ही दौड़ता जा रहा है। यह मुझ जीवात्मा के लिये व्यथा का विषय है । (यह बात सही है कि जीवात्मा को आनन्द प्राप्ति के लिये कहो, या मोक्ष के लिये कहो, प्रभु की निकटता अनिवार्य है और यह निकटता अपने शरीर के भीतर के हृदयप्रदेश= अन्तरात्मा में ही तो सम्भव है। ऐसी स्थिति में जीवात्मा गहन चिन्तन करता हुआ अपने आप से कहता है)-अरे जीवात्मन्! आनन्द रस के पानार्थ अपने अन्तरात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य साधन और पदार्थ में उस परमेश्वर को नहीं प्राप्त किया जा सकता है। उसकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है, क्योंकि विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः =वह ऐश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्टतर है।

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१२

मैं परमेश्वर, हे प्रकृति शक्ते! मित्र जीव के बिना इस जगत् में नहीं रमता। जीव लोग भी इस जगत् में अवश्य रहते हैं। मेरा यह जगत् परमाणुओं से बना हुआ है। जीवों का प्रिय एवं भोग्य हुआ उनकी इन्द्रियों से गृहीत होता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्टतर है।

इस लेख के प्रारम्भ के प्रथम वाक्यसमूह में ये प्रश्न उत्पन्न हुए थे-

इस संसार की महिमा, मनुष्य की बुद्धि, अन्ततः यह गोरख धंधा, क्या, कैसे? किसने बनाया? किस वस्तु से? किस प्रयोजन? मनुष्य के मन में, तत्त्ववेत्ता लोग, नये रहस्य इत्यादि।

इन प्रश्नों का समाधान इन दो मन्त्रों में खोजने का प्रयत्न करते हैं-

मन्त्र १२ में परमेश्वर प्रकृति शक्ति से कह रहे हैं-हे इन्द्राणि!=हे प्रकृति शक्ते! अहम्=मैं, इन्द्र=परमेश्वर, सख्युः=सखा, मित्र, वृषाकपेः=जीवात्मा के, ऋते=बिना, न=नहीं, राण=इस जगत् में रमता वा इसे व्यक्त करता। अर्थात् इस संसार में अपने सखा जीवात्माओं के बिना मैं रह नहीं सकता। क्योंकि; इनके बिना इस संसार की रचना निरर्थक है। केवल प्रकृति और परमेश्वर के होने से संसार में गतिशीलता आ ही नहीं सकती; क्योंकि प्रकृति भोग्या है, जड़ है, स्वयं निष्क्रिय है और परमेश्वर भोक्ता नहीं है, भोक्ता तो जीवात्मा है, परमेश्वर केवल जीवात्माओं के कर्मों का साक्षी तथा फलदाता है। अतः इस संसार में प्रकृति का भोग करने वाला जीवात्मा ही है, जिसके बिना परमात्मा का संसार की रचना का उद्देश्य पूरा ही नहीं होता। अतः परमात्मा ,जीवात्मा तथा प्रकृति ये तीनों पदार्थ गतिशील होने से ही संसार शब्द की भी सार्थकता है। यह

संसार शब्द **सृ गतौ** धातु से निष्पन्न होता है। संसार का गतिशील होना कहो या सार्थक होना कहो, तभी संभव है जब तीनों अपने-अपने कार्यों में गतिशील रहें, संलग्न रहें।

मन्त्र २ में जीवात्मा परमात्मा प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तो वह आत्म-चिन्तन करके अपने आप से कहता है ''अरे जीवात्मन्! आनन्दरस के पानार्थ वह परमात्मा अपने अन्तरात्मा=हृदय में ही प्राप्त हो सकता है इत्यादि। इस मन्त्र से संसार की रचना का प्रयोजन-आत्मा के दर्शन कहो, परमात्मा की प्राप्ति कहो या आनन्द की प्राप्ति कहो, सबकी सिद्धि एक साथ हो जाती है। वेदों में इस प्रकार के सैकड़ों मन्त्र हैं, यहाँ संक्षेप में इतना ही।

खण्ड २

कण्डिका २ खंड ३ में आत्मा, इन्द्रिय और शरीर आदि के सम्बन्ध का वर्णन हुआ है। हम यह देखना चाहते हैं कि ये इन्द्रियाँ आत्म-परमात्म दर्शन में कितनी बाधक हैं अथवा साधक हैं-

१ शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने कहा है-

''शंस्य पशून्मे पाहीति पशूनां हैष ईष्टे तत्पशूनेवास्माऽएतत्परिददाति गुप्त्यै।''

(शत. २-४-१-५)

पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार (स्वामी समर्पणानन्द) ने इसका भाष्य किया है- हे परम प्रशंसनीय! ये इन्द्रियाँ तथा निसर्गज बुद्धियाँ मेरे पशु हैं, परन्तु जब मैं तेरी प्रशंसा छोड़कर इन पशुओं के पीछे चल पड़ता हूँ, तो ये न जाने मुझे कहाँ-कहाँ घसीटते फिरते हैं।

यह आहवनीयाग्नि मेरे जीवन के ध्येय का प्रतीक है। यही मेरा आपसे सम्बन्ध जोड़ता है, जब तक मैं इसकी तथा इसके द्वारा आपकी प्रशंसा करता हूँ, तब तक ये पशु वश में रहते हैं। सो ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मैं आपके तथा अपने आहवनीय ध्येय की प्रशंसा न भूलूँ। इसी में मेरा कल्याण है, इसी में इन पशुओं का। सो हे शंस्य! मेरे पशुओं की रक्षा कीजिए। इस प्रकार पशुपति भगवान् को अपने पशु-रक्षा के लिये समर्पण करता है।

२. इसी प्रकार वेद में कहा है-

(१) न विजानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ॥ (ऋ. १-१६४-३७)

अर्थात् जो कुछ, जैसा यह मैं हूँ, यह मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूँ, मूढ़ के जैसा मैं मन से बँधा हुआ, विचर रहा हूँ।

इस प्रकार जो मनुष्य मन का स्वामी बनने के विपरीत सेवक बन जाये, तो यह उसकी अज्ञानता कहो, मूढ़ता कहो, विवशतावश रोना, उसके पतन का कारण ही तो है।

(२) वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुः , वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्॥ (ऋ. ६-९-६)

इस मन्त्र में स्तोता की करुण पुकार सुनिए-वह अपने प्रभु से कह रहा है- हे प्रभु! मेरे कान विविध दिशाओं में गिरा रहे हैं, भगा रहे हैं। मेरी आँख भी विविध रूपों में मुझे गिरा रही हैं। इनके कारण यह ज्योति भी जो मेरे हृदय में निहित है, विविध वासनाओं में दौड़ रही है। अर्थात् स्तोता अपने प्रभु से गिड़गिड़ाकर यह प्रार्थना कर रहा है कि ये सारी इन्द्रियाँ मेरे वश में नहीं आ रही हैं, यद्यपि मैं इन इन्द्रियों का स्वामी हूँ, और ये मेरी सेवा करने वाली हैं, मेरे समक्ष विपरीत परिस्थिति आ खड़ी हुई है, अतः मैं हृदय में निहित आत्म-ज्योति के दर्शन कैसे कर सकता हूँ। हे प्रभु! मुझमें सामर्थ्य दीजिए कि मैं इन इन्द्रियों को इनके बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करके आत्म-ज्योति के=आपके दर्शन कर अपने इस मनुष्य जीवन को सफल बना सकूँ।

(३) कठोपनिषद् में कहा है-

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्
पश्यति नान्तरात्मन्।

(कठ. ४-१)

स्वयंभू अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों को बाहर की तरफ जाने वाली बनाया है, अन्दर आत्मा की तरफ नहीं। संसार में हमें यही देखने को मिलता है - प्रायः भोले अज्ञानी मनुष्य बाहर फैली हुई विषय-भोग की सामग्री के पीछे दौड़कर तृप्त होने के विपरीत मृत्यु के जाल में फँस जाते हैं, पुनः संसार में जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं।

(४) वस्तुस्थिति यह है कि जब इन्द्रियाँ अपने विषयों से सम्पर्क करती हैं, ज्ञान प्राप्त करती हैं तो इस स्थिति को उपनिषद् की भाषा में बोध कहा गया है। बोध की स्थिति मनुष्य को संसार के बन्धन में बाँधने वाली होती है, ऐसी स्थिति में आत्म-दर्शन कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाकर अन्दर की तरफ लौटाना होता है, इसे उपनिषद् में प्रतिबोध की अवस्था कहा गया है। केनोपनिषद् में इसी विषय का वर्णन है-

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेमृतम्।

(केन. २-४)

प्रतिबोध की अवस्था तभी संभव है जब मनुष्य वीर्यवान् हो, वीर्यहीन मनुष्य की प्रतिबोध की अवस्था नहीं आती। इन्द्रियों के विषयों में फँसने वाला मनुष्य वीर्यहीन हो जाता है, पुनः वीर्यहीन मनुष्य का विषय भोग के चक्कर से निकलना अधिक कठिन हो जाता है। अतः इन्द्रियों को उनके बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करने पर ही प्रतिबोध की स्थिति, जिसे आत्म-शक्ति को जागृत करना कहा जाता है, प्राप्त होती है। बोध-अविद्या है, प्रतिबोध-विद्या है। यथार्थ ज्ञान है इस विद्या से ही अमृत=आत्म दर्शन की प्राप्ति होती है।

उपनिषदों के अनुसार अविद्या को अविज्ञान कहा गया है, जिसका भाव है, उसका मन सदा आत्मा से अ-युक्त रहेगा, जिससे उसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं रहतीं।

इसी तथ्य को अन्यत्र उपनिषद् में कहा है-

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥

(कठ. ३-६)

अर्थात् जो विज्ञानवाला है, जिसका मन आत्मा से जुड़ा रहता है, उसकी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं, जैसे घोड़े सारथि के वश में रहते हैं।

विज्ञान का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि-

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

(कठ.३-९)

अर्थात् जिसका विज्ञान=बुद्धि सारथि है-कोचवान है, जो मनरूपी लगाम को अपने हाथ में रखता है, वह इस संसार रूपी मार्ग का पार पा लेता है, वह विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है, वह परम-आत्मा तक पहुँच जाता है।

इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥

कठ.(६-१०)

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, भागती फिरती नहीं, ठहर जाती हैं और मन निश्चल बुद्धि के साथ आ मिलता है, उस अवस्था को परम गति कहते हैं।

कंडिका ८

कंडिका ७ खण्ड १ में वर्णन आया है कि "परमात्मा की प्राप्ति जीवात्मा=मनुष्य के लिये व्यथा का विषय है" इत्यादि। इसका कारण खोजने का प्रयत्न करते हैं। यह 'व्यथा' अन्ततः है क्या? क्यों मनुष्य के पीछे पड़ी हुई है? इस व्यथा की गुत्थि को आचार्य यम ने नचिकेता को उपदेश देते हुए सुलझाया है, वे कहते हैं-

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

(कठ. २-६)

यह मनुष्य वस्तुतः बड़ा होकर भी बुद्धि में बच्चा ही है, धन के मोह से दूसरी बात सोच ही नहीं सकता, ऐसे प्रमादी को 'सांपरायः' अर्थात् परलोक साधक नियम-शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान तथा यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह पसंद नहीं आते। वह यह मान बैठा है कि यही लोक है, परलोक नहीं है। ऐसा व्यक्ति बार-बार मेरे चंगुल में आ फँसता है, बार-बार मरता है, बार-बार पैदा होता है।

यमाचार्य ने इस व्यथा की दूसरी समस्या यह बताई है, वे कहते हैं-

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

(कठ. २-७)

बहुतों को तो यह सुनने को ही नहीं मिलता, बहुत से लोग उसे सुनते हैं, पर फिर भी कुछ जान नहीं पाते, एक तो उसका कहने वाला बिरला है, दूसरा उसका पाने वाला कोई कुशल ही है, कुशल गुरु के उपदेश से कोई बिरला ही उसे जान पाता है।

यमाचार्य ने तो बड़े विस्तार से इस व्यथा का निदान बताया है, हम संक्षेप में एक दो उद्धरण देना चाहते हैं-

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन्।

(कठ.४-१)

अमृत को चाहने वाला कोई धीर पुरुष ही होता है, जो विषयों से आंखें मून्द लेता है और मुड़कर आत्मा को देखता है।

अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥

(कठ. ४-२)

यही कारण है कि धीर लोग अमृतत्व को जानकर अध्रुवों में, अर्थात् अस्थिर वस्तुओं में, ध्रुव स्थिर वस्तु=अमृत की याचना नहीं करते।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आत्मा के चक्कर में पड़े बिना क्या मनुष्य का जीवन सफल नहीं हो सकता? इस सम्बन्ध में केनोपनिषद् में कहा है कि-**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहवेदीन्महती विनष्टिः।** हे मनुष्य! यदि तूने उसे यहाँ इस जन्म में जान लिया तब तो ठीक है, यदि यहाँ नहीं जाना, तो विनाश ही विनाश है, महानाश है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य योनि केवल भोगयोनि नहीं है, इसे ही तो संसार की मोह माया से छुटकारा पाकर मुक्ति पाने का शुभ अवसर परम पिता परमात्मा ने दिया है, मनुष्येतर विभिन्न प्रकार के पशु, पक्षी आदि जो भोगयोनियाँ हैं, उन्हें यह शुभ अवसर थोड़े ही मिला है।

ब्रह्मविद्या के महान् विद्वान् महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी को उपदेश देते हुए समझा रहे हैं कि पुत्र, पत्नी, पति आदि पुत्रादि की कामना के लिए प्रिय नहीं होते, अपनी आत्मा की कामना के लिए ही प्रिय होती है। अतः आत्मदर्शन की कामना करना चाहिए।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

अरे मैत्रेयि! आत्मा का ही दर्शन=साक्षात्कार करना चाहिये। दर्शन के साधन श्रवण, मनन, तथा निदिध्यासन हैं। श्रवण के साधन श्रुतिवाक्य अर्थात् वेद हैं, आत्मज्ञान कराने वाला वेद से बढ़कर अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। युक्तियों के द्वारा मनन करना ही तो मन्तव्य कहलाता है। श्रवण, मनन के बाद निदिध्यासन आता है। बार बार निरनतर वैसा ही आचरण निदिध्यासन कहलाता है। अतः अरे मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से, सुनने से, समझने से और जानने से सब गाँठे खुल जाती हैं।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में प्रजापति, इन्द्र तथा विरोचन की कथा में 'आत्मा' के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से वर्णन आया है, हम केवल प्रजापति की घोषणा से आपका परिचय करा रहे हैं-

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः। स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच।

छान्दो. अ. प्रपा. खंड ७

'प्रजापति' ने घोषणा की कि हृदयाकाश में जिस 'आत्मा' का निवास है, वह पापों से अलग है, जरा और मृत्यु से छुटा हुआ है, भूख और प्यास से परे है, सत्य-काम और सत्य-संकल्प है, उसी की खोज करनी चाहिए, उसी को जानना चाहिए। जो उस 'आत्मा' को ढूँढकर जान लेता है, वह सब लोकों को और सब कामनाओं को पा लेता है।

सामवेद का यह मन्त्र भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है-

आदीं केचित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत॥

साम. १४९५

हृदय में श्रद्धा तथा मस्तिष्क में ज्योति के विकास के आत् इम्=ठीक पश्चात् बिना किसी अन्य विलम्ब के, केचित् =कुछ बिरल पुरुष उस, आप्यम्=सबके प्राप्त करने योग्य, दिव्याः वसुरुचः=सर्वत्र बसने वाले व सभी को अपने में निवास देने वाले प्रभु की दिव्य कान्तियों को,

पश्यमानास:= देखते हुए, अभ्यनूषत= उसका स्तवन करते हैं।

आत्मतत्व की ओर विरल पुरुषों की ही प्रवृत्ति होती है। अन्यत्र कहा है "**आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्**"।

तात्पर्य यह है कि प्रभुदर्शन=आत्मदर्शन की प्रबल इच्छा होने पर यह व्यक्ति अपने में श्रद्धा व ज्ञान का विकास करने के लिए सतत प्रयत्नशील होता है, क्योंकि इनके बिना प्रभु दर्शन, आत्म दर्शन सम्भव नहीं।

इस लेख का मूल प्रेरणास्त्रोत निम्न वेद मन्त्र ही तो है-

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थनवन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत्॥

(ऋ. १-१६४-४)

शब्दार्थ- यत्=जिस, अस्थन्वन्तम्=हड्डियों वाले को, अनस्था=हड्डी रहित अर्थात् जीवात्मा, बिभर्ति=धारण करता है,

उस प्रथमम्=मुख्य, प्रख्यात् अर्थात् सृष्टि के पहिले, जायमानम्=उत्पन्न होने वाले को, क:=कौन, ददर्श=देखता है? ये असु:=प्राण तथा असृक्=रुधिर तो, भूम्या:= भूमि से, प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, आत्मा=आत्मा, क्व स्वित्=कहाँ है? एतत्=इसको प्रष्टुम्=पूछने के लिए, क:=कौन, विद्वांसम्=विद्वान् के, उप+अगात्=पास जाता है?

भावार्थ- इस मन्त्र में यह कहा गया है कि हड्डी वाले को अर्थात् हड्डी, मांस आदि धातुओं से युक्त प्राकृत शरीर को हड्डी रहित अप्राकृत जीवात्मा धारण करता है, इसको कौन देखता है? अर्थात् यह हाड़-मांस का शरीर इन चर्म चक्षुओं से तो देखा जा सकता है, परन्तु जीवात्मा चर्मचक्षुओं का विषय नहीं है। अत: इस शरीर में उत्पन्न होने वाले अर्थात् धारण करने वाले प्रमुख तत्व को कौन देखता है? तात्पर्य यह है कि यद्यपि जीवात्मा तो अजन्मा है, शाश्वत है, नित्य है, परन्तु शरीर धारण से ही उसका अस्तित्व प्रत्यक्ष होता है। पुन: कहा कि यह प्राण तथा रुधिर से युक्त शरीर तो भूमि से अर्थात् भूमि आदि प्राकृत पदार्थों से बना है, परन्तु आत्मा कहाँ है, इस तत्त्व को जानने के लिए ऐसा कौन जिज्ञासु है, जो किसी विद्वान् के पास पूछने के लिए जावे?

वैदिक साहित्य में उपनिषद्- शास्त्रों में ब्रह्म-विद्या का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में कथानक आया है-

कहते हैं कि एक बार सनत्कुमार, अर्थात् सदा कुमार रूप रहने वाले ऋषि के पास नारदमुनि पहुँचे और उनसे कहा, भगवन्! मुझे ज्ञान दीजिये। ऋषि ने कहा, जो कुछ तुम पहले जानते हो वह बतलाओ, तब मैं उससे आगे तुम्हें शिक्षा दूँगा। नारद ने कहा, भगवन्! मैं वेदादि सभी शास्त्रों को पढ़कर मन्त्रवित् हुआ हूँ, परन्तु आत्मवित् नहीं हुआ, मुझे शब्द-ज्ञान तो हो गया है, परन्तु आत्म-ज्ञान नहीं हुआ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या कोई विद्वान् या गुरु स्वयमेव जिज्ञासु को आत्म-दर्शन कराने में समर्थ हो जाता है? इसका उत्तर खोजते हैं। जब यह जीव=आत्मा जिज्ञासु इस प्रकृति=भौतिक जगत् की चकाचौंध में भाग-भाग कर थक जाता है, उसे सच्चा सुख कहो, आत्मानन्द कहो प्राप्त नहीं होता, तब वह किसी ज्ञान सम्पन्न गुरु के पास जाकर कैसी विनती करता है, इस संदर्भ का एक बड़ा ही सुन्दर संवाद निम्न वेद मन्त्र में आया है-

चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि।

-(साम. ६४५)

हे "चिकित्व:=ज्ञान सम्पन्न गुरो! न:=हमें, अभिनय=धर्म के, सच्चे सुख के मार्ग की ओर ले चलो"। उसकी इस प्रार्थना पर गुरु उसे कहते हैं- "इन्द्र:= प्रभु ही, विदे= ज्ञानी है, तम् उ स्तुहि = उसकी ही स्तुति करो। मुझे तो प्रभु जितना मार्ग दिखाएँगे, मैं तो उतना ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर पाऊँगा, अन्त में सभी के मार्गदर्शक वे प्रभु ही हैं।"

अब यह आत्म जिज्ञासु प्रभु की स्तुति करता है -

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्त्रव॥

-(ऋ. ९-११३-१०)

भावार्थ- हे निष्कामानन्दप्रद परमात्मन्! जिस आपमें, सब कामना, अभिलाषा छूट जाती है और जिस आपमें, ब्रह्मज्ञान का सर्वोच्च पद है, जहाँ अमृत है और तृप्ति है, वहाँ मुझको मोक्षपद प्राप्त कराईये। हे परमैश्वर्य सम्पन्न प्रभो! आप इस आत्मदर्शन के जिज्ञासु के लिए पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें। इत्योम्।

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रात: एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नि:शुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का नि:शुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा नि:शुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ नि:शुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में नि:शुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अत: आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० नवम्बर २०१८ तक)

१. श्री भँवरलाल व्यास, भीलवाड़ा २. श्री मिहिर चतुर्वेदी, मुंबई ३. श्री जितेन्द्र सिंह वेदी, अजमेर ४. श्री कन्हैयालाल आर्य, भीलवाड़ा ५. श्री सौरभ कुमार मल्होत्रा, दिल्ली ६. श्री अर्जुन व सुश्री आरवि, सोनीपत ७. श्री विशाल तँवर, नई दिल्ली ८. श्री मुकेश कुमार व श्रीमती सुनीता देवी, नई दिल्ली ९. श्री अनिल कुमार, नांगल राया दिल्ली १०. श्री संत कुमार तोमर, नई दिल्ली ११. श्रीमती पुष्पा, नई दिल्ली १२. सुश्री पारुल तँवर, नई दिल्ली १३. श्री बी.डी. उक्खल, नई दिल्ली १४. श्रीमती सन्तोष मदान, नई दिल्ली १५. श्री जय भगवान, नई दिल्ली १६. श्री गजराज सिंह, नई दिल्ली १७. श्री गोपाल कृष्ण सेठी, नई दिल्ली १८. श्रीमती निशा देवी व श्री नगेन्द्र सिंह, नई दिल्ली १९. श्रीमती उमा मोंगा, नई दिल्ली २०. श्री कमलेश कुमार मीणा व श्रीमती पिंकी मीणा, नई दिल्ली २१. श्रीमती मनीषा, नई दिल्ली २२. श्री प्रमोद कुमार, नई दिल्ली २३. श्री रमेशचन्द्र आर्य, नई दिल्ली २४. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, गुरुग्राम २५. श्रीमती कमला, गुरुग्राम २६. श्री प्रणव आर्य व श्रीमती शिखा आर्य, नई दिल्ली २७. श्री शत्रुघ्न गुप्ता, राँची २८. श्री सत्यानन्द आर्य व श्रीमती पुष्पा आर्य, नई दिल्ली २९. सुश्री ओमलता चौहान, कोटा ३०. श्रीमती मन्जु गुप्ता, विशाखापट्टनम।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३० नवम्बर २०१८ तक)

१. श्री ज्ञानचन्द व श्री दयालदास, अजमेर २. श्रीमती ओमकुमारी शर्मा, अजमेर ३. श्रीमती सावित्री देवी, सोनीपत ४. चौधरी रामलाल आर्य व श्रीमती शान्ति आर्य, चुरु ५. श्री ताराचन्द, रेवाड़ी ६. श्री शशि पुरोहित, प्रतापगढ़ ७. श्रीमती मुन्नीदेवी, जेठाना, अजमेर ८. श्री ओमप्रकाश अजमेरा, अजमेर ९. श्रीमती आशा रायजादा, अजमेर १०. श्री श्यामसुन्दर, अजमेर ११. श्री जगदीश चन्द व श्री कमल काबरा, अजमेर १२. श्रीमती करुणा गौड़, अजमेर १३. श्री दिनेश कुमार गुप्ता, जयपुर १४. श्रीमती यशोदा जुनेजा, गुड़गाँव १५. श्री रामप्रसाद, सराधना, अजमेर १६. श्रीमती सुधा त्रिपाठी, अजमेर १७. श्री ब्रजलाल स्वामी, चुरु १८. श्री अरविन्द व अलका राठी, भीलवाड़ा १९. श्रीमती राजकली आर्य, जीन्द २०. श्रीमती मन्जु गुप्ता, अजमेर २१. श्री मूलचन्द तोषनीवाल, भीलवाड़ा २२. श्री वेदवीर सिंह, जयपुर २३. श्रीमती चन्द्रमुखी आर्य, कैथल २४. श्री अर्जुन व सुश्री आरवि, सोनीपत २५. श्री मयूर पंकज कुमावत, अजमेर २६. श्रीमती रतन वाधवा, नई दिल्ली २७. श्री दीपक डाबर, नई दिल्ली।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। **(स. प्र. ३)**

शङ्का समाधान – ३९

डॉ. वेदपाल

शङ्का- हमें न तो पूर्वजन्म का ज्ञान है और न ही अपने भविष्य-जन्म का ज्ञान है, तो फिर किसलिए मोक्ष का प्रयास करें? क्यों न अपने वर्तमान को खुलकर जिएं?

भारत भूषण आर्य, जम्मू

समाधान- सामान्यत: व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती, किन्तु स्मृति न रहने का अर्थ पूर्वजन्म का अभाव नहीं है। संसार में इस प्रकार की बहुत सी घटनाएं घटित होती हैं, जिनकी स्मृति व्यक्ति को नहीं रहती तो क्या उन सबका अभाव मानना उचित होगा? स्पष्टत: नहीं। जो हमारे ज्ञान-क्षेत्र में हो वही सत्य/यथार्थ है, अन्य नहीं, ऐसा मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण नहीं है, अपितु अनुमान एवं शब्द भी महत्त्वपूर्ण (अतीन्द्रिय विषयों में तो विशेषरूप से) प्रमाण हैं।

पूर्वजन्म/पुनर्जन्म को लेकर विदेशी विद्वानों ने सैकड़ों घटनाओं का विश्लेषण किया है, जिनके आधार पर पुनर्जन्म को स्वीकार किया है।

न्याय दर्शन-"आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्ति दोषप्रेत्यभावफलदु:खापवर्गास्तु प्रमेयम्"-१.१.९ में **'प्रेत्यभाव'** की गणना प्रमेयान्तर्गत (प्रमेय=प्रमातुं योग्य: प्रमेय:=जानने योग्य) की गई है। तथा-

"पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः"-वही १.१.१९ पुनरुत्पत्ति- मरकर जन्म लेने (पुनर्जन्म) को प्रेत्यभाव कहा है। अर्थात्- मरने के पश्चात् शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के साथ जीवात्मा के पुन: सम्बन्ध को पुनर्जन्म कहते हैं।

भारतीय दर्शन की दृष्टि से पुनर्जन्म यथार्थत: व्यावहारिक है। सृष्टि में विद्यमान वैचित्र्य (कोई जन्म से धन-ऐश्वर्य सम्पन्न है, तो कोई विपन्न, किसी का जन्म श्रेष्ठकुल में तो किसी का सामान्य या निकृष्ट कुल में आदि-आदि) अकस्मात् नहीं है, अपितु इस वैचित्र्य का कारण जीवों के पूर्वजन्म में किए गए कर्मों की विचित्रता है। तद्यथा-

'कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'-सांख्य दर्शन ६.४१

अर्थात्-सृष्टि/जगत् में उपलब्ध विचित्रता/अनेकरूपता का कारण जीव के कर्म की विचित्रता/अनेकरूपता है। व्यक्तियों के शरीर की भिन्नता का कारण कर्म का भेद है-

'व्यक्तिभेद: कर्मविशेषात्'- सांख्य दर्शन ३.१०

यहाँ यह स्मरणीय है कि पूर्वसूत्र **'सप्तदशैक लिङ्गम्'** ३.९ में लिङ्ग शरीर= सूक्ष्म शरीर का प्रसङ्ग है। सभी सूक्ष्म शरीर एक समान सत्रह (पाँच प्राण+पाँच ज्ञानेन्द्रिय+पाँच सूक्ष्मभूत=तन्मात्राएं+मन और बुद्धि=५+५+५+१+१=१७) तत्त्वों से निर्मित हैं। **सभी सूक्ष्म शरीरों के तुल्य होने पर व्यक्तिभेद=स्थूल शरीर अथवा मनुष्य, पशु, तिर्यग् आदि योनियों के भेद का क्या कारण है? परमर्षि कपिल ने इस जिज्ञासा का समाधान प्रकृत सूत्र ३.१० (व्यक्तिभेद: कर्मविशेषात्) द्वारा किया है कि व्यक्ति=मनुष्य, पशु आदि शरीर/योनि भेद का कारण उन जीवों द्वारा पूर्व में किए गए कर्म विशेष हैं।**

पुनर्जन्म की पुष्टि में न्यायदर्शनकार की युक्ति है कि- **'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः'** न्याय दर्शन ३.१.१९। **सद्योजात**।-अभी-अभी पैदा हुए बालक को हर्ष, भय, शोक होते हैं। इससे भी पुनर्जन्म की पुष्टि होती है। अर्थात् नवजात शिशु को कभी हर्षयुक्त तथा कभी भयभीत देखा जाता है। वह हर्ष, भय के कारण तो इस जन्म के नहीं हैं, अपितु पूर्वजन्म की स्मृति के आधार पर ही वह हर्षित तथा भयभीत होता है। यही अवस्था शोक=दु:ख की भी है। **'प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्'**- न्याय दर्शन ३.१.२२ नवजात शिशु स्तनपान की अभिलाषा करता है। बालक का यह अभ्यास भी पुनर्जन्म का साधक है।

पूर्वजन्म के ज्ञान एवं पुनर्जन्म के विषय में महर्षि दयानन्द का अभिमत द्रष्टव्य है-

'प्रश्न-जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर-अनेक।

प्रश्न-जो अनेक हों तो पूर्वजन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर-जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिए

स्मरण नहीं रहता और जिस मन से ज्ञान करता है वह **भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता।** भला पूर्वजन्म की बात तो दूर रहने दीजिए, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना पश्चात् जन्मा, पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता और **जाग्रत वा स्वप्न में बहुत-सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जाग्रत् आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता?** और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पाँचवें महीने के नवें दिन, दस बजने पर पहले मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकार का था? और मन में क्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करना केवल लड़कपन की बात है **और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख-देख दु:खित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता, क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।''**

(**द्रष्टव्य**- सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ९, पृष्ठ १६३ तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-'पुनर्जन्मविषय:' भी द्रष्टव्य है।)

आपने भविष्य-जन्म के ज्ञान की चिन्ता व्यक्त की है। इसके ज्ञान की चिन्ता अनावश्यक है, क्योंकि आगामी जन्म वर्तमान जीवन में किए जाने वाले कर्मों के आधार पर प्राप्त होना है। यदि कर्म इस प्रकार के हैं कि उनका फल मानवेतर योनि में भोगने योग्य है, तब उस प्रकार की योनि प्राप्त होगी और यदि कर्म इस प्रकार (यथा विद्यादान, ज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान, जीवन में अहिंसा एवं कारुण्य आदि) के हैं कि उनका फल मनुष्य-योनि में ही भोगना सम्भव है, तब मनुष्य-योनि प्राप्त होगी। योगदर्शन व्यास भाष्य में कर्मगति को ''**कर्मगतिश्चित्रा दुर्विज्ञाना चेति**'' २.१३ कर्मफल की पद्धति को विचित्र=आश्चर्योत्पादक और बहुत कठिनाई से समझने योग्य कहा है। इस विषय में योगदर्शन के निम्न दो सूत्र द्रष्टव्य हैं-

क-'**क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय:**'।

ख-'**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:**'-योग दर्शन २.१२-१३

वर्तमान को खुलकर जीने से आपका अभिप्राय क्या उच्छृंखल जीवन से है अथवा विवेकपूर्वक सत्कर्मरत रहकर मर्यादित जीवन से है, इसे आपने इंगित नहीं किया है। सदाचारपूर्वक निष्काम कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना ही वस्तुत: खुलकर जीना है। कदाचरणपूर्ण जीवन तो आशंकित एवं दुविधायुक्त होने से खुलकर जीना नहीं है।

आपने पूर्व एवं आगामी जन्म के ज्ञान को मोक्ष से सम्बद्ध कर लिया है, जबकि ऐसा नहीं है। इन जन्मों के ज्ञान से (यदि वह सम्भव हो भी जाए) मोक्ष का प्रयोजन कहीं बृहत्तर है। इन जन्मों के ज्ञान से दु:खनिवृत्ति कथमपि सम्भव नहीं है, जबकि मोक्ष का प्रयोजन त्रिविध दु:ख की आत्यन्तिक (मुक्ति की अवधिपूर्ण होने तक) निवृत्ति है। यह स्वतन्त्र लेख का विषय है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के सम्बद्ध स्थल देखें, तब मुक्ति की महत्ता स्पष्ट हो सकेगी। **-जागृति विहार, मेरठ**

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान में अष्टाध्यायी अनुक्रम से संस्कृत व्याकरण, दर्शन एवं अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों की कक्षाएँ प्रारम्भ हो रही हैं। अध्ययन आर्ष पाठविधि से कराया जायेगा। विद्यार्थियों के आवास एवं भोजनादि का सम्पूर्ण व्यय सभा की ओर से किया जायेगा। गुरुकुल सम्बन्धी सभी नियमों एवं दिनचर्या आदि का पालन अनिवार्य होगा। विद्यार्थी की आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो। इच्छुक छात्र निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

आचार्य विद्यादेव
महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल
ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग
अजमेर-३०५००१ (राज.)
सम्पर्क-९८७९५८७७५६, ०१४५-२४६०१६४,
Email- psabhaa@gmail.com

प्रहलाद का उत्कृष्ट न्याय

शिवनारायण उपाध्याय

महाभारत युद्धकाल की घटना है। धृतराष्ट्र ने कूटनीति द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध न करने के लिए राजी करने के लिए संजय को उपप्लव्य में भेजा। संजय ने युधिष्ठिर को युद्ध से होने वाले नरसंहार की भयंकरता बताकर कहा कि राजा धृतराष्ट्र युद्ध नहीं चाहते, शान्ति चाहते हैं। यह नरसंहार तुम्हारे यश के अनुकूल नहीं है। तुम युद्धरूपी पाप में प्रवृत्त मत होओ। आपकी बुद्धि कभी भी अधर्म में नहीं लगती। आप तो क्रोध में भी पाप-कर्म नहीं करते, फिर क्या कारण कि आप अपनी आत्मा के विपरीत कर्म करना चाहते हैं। युधिष्ठिर ने कहा कि पहले आप यह कार्य, धर्म है या अधर्म इस पर विचार कर लो। तब श्रीकृष्ण ने कहा, पाण्डवों का जो राज्य-भाग धर्म के अनुसार उन्हें प्राप्त होना चाहिए उसे धृतराष्ट्र हड़प लेना चाहता है। वास्तव में धर्म को बिना समझे ही तुम युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश देना चाहते हो। संजय अपनी कूटनीति में असफल होकर हस्तिनापुर आ गया और उसने धृतराष्ट्र को अन्त:पुर में जाकर बता दिया कि अब सन्धि होना असंभव है। उसने युद्ध के लिए धृतराष्ट्र को ही दोषी ठहराया। इस पर धृतराष्ट्र ने उसे तुरन्त वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी और द्वारपाल को भेजकर विदुर को बुलवा भेजा। विदुर के आने पर धृतराष्ट्र ने कहा-'विदुर! संजय आया था, मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है। मैं युधिष्ठिर की बात नहीं जान सका इससे मुझे नींद नहीं आ रही है। मैं बड़ा चिन्तित हूँ।'

विदुर ने कहा-राजन्! युधिष्ठिर आपके आज्ञाकारी थे आपने उन्हें वन में भेज दिया। वे आप में पूज्य बुद्धि रखते हैं। आप अपने पुत्रों और पाण्डु- पुत्रों के साथ समान कोमलता का व्यवहार कीजिये। आप न्याय कीजिये। राजा प्रहलाद न्याय में भेद-भाव नहीं करते थे, इससे उनका यश सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है। आप भी ऐसा ही कीजिये। इस विषय में आपको मैं एक घटना बता रहा हूँ।

एक समय केशिनी नामक एक सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या ने श्रेष्ठ पति प्राप्त करने के लिए स्वयंवर की घोषणा की। चूंकि सम्पूर्ण विश्व में वह शीलवती, रूपवती और विदुषी मानी जाती थी, इसलिए महाराज प्रहलाद के पुत्र युवराज विरोचन ने उसे प्राप्त करने का विचार किया और स्वयंवर सभा में उपस्थित हुआ। केशिनी ने उससे कहा- विरोचन ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं अथवा दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो मैं अंगिरा पुत्र सुधन्वा से विवाह क्यों न करूं?

विरोचन ने कहा-'केशिनी! हम प्रजापति की श्रेष्ठ सन्तानें हैं अत: सबसे उत्तम हैं। हमारे सामने देवता अथवा ब्राह्मण का क्या महत्त्व है?'

तब केशिनी ने कहा-विरोचन! हम दोनों यहीं पर प्रतीक्षा करें, कल प्रात:काल सुधन्वा यहाँ आयेगा, फिर मैं तुम दोनों को एक साथ ही देखूँगी।

विरोचन ने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रात:काल ही सुधन्वा भी आ गया। सुधन्वा को आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसका उचित स्वागत किया। विरोचन ने उसे अपने साथ सिंहासन पर बैठने को कहा तो सुधन्वा ने उसके साथ बैठने से इसलिए अस्वीकार कर दिया कि ऐसा होने पर तो दोनों समान हो जाएँगे।

विरोचन ने व्यंग्यपूर्वक उससे कहा, ''सुधन्वा! तुम्हारे लिए तो कुश अथवा चटाई का आसन ही उचित है, तुम मेरे साथ सिंहासन पर बैठने के योग्य हो ही नहीं।''

सुधन्वा ने कहा- 'पिता और पुत्र एक आसन पर बैठ सकते हैं।' दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं। विरोचन ने कहा, ''सुधन्वन्! हम दोनों चलकर जो इस विषय के जानकार हों उनसे पूछें कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है।'' सुधन्वा ने इसे स्वीकार कर लिया। फिर विरोचन ने कहा कि वह देवताओं या मनुष्यों पर विश्वास नहीं करता। उनका निर्णय पक्षपात युक्त होगा। इस पर सुधन्वा ने विरोचन के पिता महाराज प्रहलाद के पास जाकर निर्णय कराने को कहा। विरोचन ने इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। यह भी तय किया कि जिसे प्रहलाद श्रेष्ठ बतायें दूसरा उसका सेवक बनकर रहेगा और केशिनी का विवाह श्रेष्ठ के साथ ही होगा। फिर वे दोनों साथ-साथ महाराज प्रहलाद से मिलने गए। जब ये प्रहलाद के निवास

स्थान के निकट पहुँचे तब प्रहलाद ने महल के झरोखे से दोनों को साथ-साथ आते देखा। महल में आने पर प्रहलाद ने सेवकों से जल और मधुपर्क लाने को कहा। सुधन्वा ने कहा कि जल और मधुपर्क तो उसे रास्ते में ही मिल गया है। उसे तो इस प्रश्न का उत्तर चाहिए कि ब्राह्मण श्रेष्ठ है अथवा दैत्य विरोचन? हम दोनों में से जो श्रेष्ठ होगा उसके अधीन दूसरे को रहना होगा। उसके प्राण भी उसी की दया पर आश्रित होंगे।

पहले तो प्रहलाद ने इस पर निर्णय देने में अपनी असमर्थता बताई। तब सुधन्वा ने कहा, 'आपके पास जो भी प्रिय धन हो उसे तो विरोचन को दे दो, परन्तु हमारे विवाद में न्याय करो। इस पर प्रहलाद ने सुधन्वा से पूछा कि जो व्यक्ति असत्य बोले और असत्य ही न्याय करे, उसकी क्या गति होगी?'

तब सुधन्वा ने कहा- ''**सौतवाली स्त्री, जुए में हारा जुआरी तथा भार ढोने वाले व्यक्ति की रात में जो स्थिति होती है, वही स्थिति झूँठे निर्णय देने वाले की होती है। जो राजा झूँठा निर्णय देता है, उसे एक दिन कैद होकर भूख का कष्ट उठाना पड़ता है।**''

तब प्रहलाद ने निर्णय दिया- ''सुधन्वा का पिता ऋषि अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ है। सुधन्वा की माता तुम्हारी माता से श्रेष्ठ है, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है। हे विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणों का स्वामी है। फिर प्रहलाद ने सुधन्वा से कहा- हे सुधन्वन्! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचन को पाना चाहता हूँ। इसके उत्तर में सुधन्वा ने कहा, प्रहलाद! आपने धर्म को स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूँठा निर्णय नहीं दिया है, इसलिए अब आपके इस दुर्लभ पुत्र को मैं आपको दे रहा हूँ।''

इतना कहकर विदुर ने धृतराष्ट्र को कहा, 'देखो दैत्य ने भी न्याय किया है। इसलिए राजेन्द्र! आप भी न्याय करो। बेटे के लिए स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियों के साथ विनाश के मुख में न जाएँ।' इति शम्।

शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा, राज.।

सोयी हुई जनता जगाई दयानन्द ने

आचार्य रामसुफल शास्त्री

सोयी हुई जनता जगाई दयानन्द ने।
वेदों की शिक्षा बताई दयानन्द ने।।
पाखण्ड था छाया हुआ शिक्षा न दी जाती थी।
नारी तो बस शूद्र और नीच कहाती थी।।
स्त्री-शिक्षा आरम्भ करवाई दयानन्द ने।। सोयी...

जाति-पाँति भेदभाव द्वेष ऊँच-नीच का।
अन्तर भी काफी था मानवों के बीच का।।
सभी की एक जाति बताई दयानन्द ने।। सोयी...

वेदों को कहते थे कि शंखासुर ले गया।
बदले में पुराणों के गपोड़ों को दे गया।।
वेद की ज्योति जगाई दयानन्द ने।। सोयी...

लोग दासता की जंजीरों में जकड़े थे।
पण्डे-पुजारी बस पेट यहाँ भरते थे।।
स्वराज की हुंकार लगाई दयानन्द ने।। सोयी...

सच्चे शिव के पूजक दयानन्द की मान लो।
वेद है वाणी सच्चिदानन्द की जान लो।।
'सुफल' सच्ची भक्ति सिखाई दयानन्द ने।। सोयी...

पुरोहित आर्यसमाज सैक्टर-७, चण्डीगढ़

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

मेरी जीवनसंगिनी

स्वामी श्रद्धानन्द

''आपकी चिन्ता दूर करने का यह महँगा सौदा नहीं है'' यह कहकर निर्जीव तुच्छ अभूषणों के बदले अपने पति की जीवन्त प्रसन्नता खरीदने वाली उस वन्दनीय देवी को मिली शिक्षा का क्या अनुमान लगाया जा सकता है? वैदिक परिवार व्यवस्था ही कुछ ऐसी है। विवाह कोई सौदा या समझौता नहीं, बल्कि समर्पण होता है, एक-दूसरे को समझना, परस्पर उन्नति की इच्छा रखना। अगर माता शिवदेवी ने भी उस दिन सौदेबाजी की होती तो एक हीरा कोयले की परतों में ही दबा रह जाता।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन हम सबके लिये प्रेरक है, पर उस प्रेरक का प्रेरक भी तो कोई है। उस प्रेरक को भला श्रद्धानन्द से बेहतर कौन बता सकता है। स्वामी जी के बलिदान दिवस पर उन्हीं की लेखनी से उन्हीं के जीवन का सबसे कीमती संस्मरण पाठकों को समर्पित। -सम्पादक

मेरी धर्मपत्नी शिवदेवी का यह नियम था कि दिन का भोजन तो मेरे कर चुकने के बाद करती थीं, लेकिन रात को जब कभी मुझे देर हो जाती और पिताजी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेतीं और जब मैं लौटता तब अंगीठी पर गरम करके मुझे भोजन करातीं और बाद को स्वयं करतीं।

एक रात मैं आठ बजे घर लौट रहा था। गाड़ी चौक के पास ही छोड़ दी। यहीं बरेली के वृद्ध रईस मुंशी जीवन सहाय का घर था। उनके बड़े पुत्र मुंशी त्रिवेणी सहाय ने मुझे रोक लिया। गजक मेरे सामने लाकर रखी। मैंने अस्वीकार किया। वे बोले-''तुम्हारे लिए ही तो दो-आतशा खिंचवाई है। यह जौहर है।''

त्रिवेणी सहाय के छोटे भाई मेरे मित्र थे। उन्हें मैं बड़े के समान समझता था। न तो मैंने 'दो आतशा का अर्थ समझा, न जौहर का' बस एक गिलास पी गया। फिर गप्पबाजी शुरु हो गई और उनके मना करने पर भी मैं चार गिलास और चढ़ा गया। वास्तव में वह बड़ी नशीली शराब थी। पीते ही प्रभाव मालूम हुआ।

दो-तीन मित्र साथ चले। एक ने कहा- चलो मुजरा करायें। उस समय तक न तो मैं कभी वेश्या के मकान पर गया था और न कभी किसी वेश्या से बातचीत की थी। केवल महफिलों में नाच देखकर चला आता था। शराब ने इतना रंग दिखाया कि पाँव ठीक से नहीं पड़ते थे।

हम एक वेश्या के कोठे पर जा धमके। कोतवाल साहब के बेटे को आया देखकर सब आवभगत में लग गयीं। बड़ी को मुजरा सजाने का आदेश हुआ। उसकी नौची के पास कोई रुपया देने वाला बैठा था। उसके आने में थोड़ी देर हो गई। न जाने मेरे मुँह से क्या अनाप-शनाप निकला। नौची घबराई हुई भागी-भागी आई और झुककर अदब से सलाम किया।

उसी समय मुझे किसी दूसरे विचार ने आ घेरा। उसने क्षमा माँगने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि मैं राम! राम!! कहते हुए कोठे से नीचे उतर गया। नीचे उतरते ही घर की ओर लपका। बैठक में पलंग पर जा गिरा और जूते आगे कर दिये, जो नौकर ने उतारे। फिर उठकर ऊपर जाना चाहा लेकिन खड़ा नहीं हो सका। उस वृद्ध नौकर ने सहारा देकर मुझे ऊपर तक पहुँचाया।

छत पर पहुँचकर रोज की तरह किवाड़ बन्द कर लिए और बरामदे में पहुँचा ही था कि उल्टी होने लगी। उसी समय सुकोमल उँगलियों वाला एक हाथ सिर पर पहुँच गया और मैंने उल्टी खुलकर की। अब शिवदेवी के हाथ में मैं एक अबोध की तरह पड़ा हुआ था। उसने कुल्ला कराया, मेरा मुँह पोंछा और मेरी कमीज जो खराब हो गई थी, बैठे-बैठे ही उतार दी तथा मुझे सहारा देकर भीतर ले गई। पलंग पर लिटाकर मुझ पर चादर डाल दी और पास बैठकर सिर और देह दबाने लगी।

मुझे उस समय का करुणा और पवित्र प्रेम से भरा उसका मुख आजीवन नहीं भूलेगा। मैंने अनुभव किया कि

माँ की ममतामयी छाया में निश्चिंत पड़ा हुआ हूँ, मेरी आँखें धीरे-धीरे बन्द हो गईं।

रात को घड़ी ने एक बजाया जब मेरी आँख खुली तो वह सोलह वर्षीय बालिका मेरा पैर दबा रही थी, मुझे जोरों की प्यास लगी थी मैंने पानी माँगा। उसने सहारा देकर उठाया। अंगीठी पर से दूध उतारा और उसमें चीनी डालकर मेरे मुँह से लगा दिया। दूध पीने पर कुछ शक्ति आई और होश हुआ। उसी समय मेरे दिमाग में से अंग्रेजी उपन्यास का नशा उतर गया और गोस्वामी जी की चौपाइयाँ याद हो आयीं। मैं उसके पास खिसक कर आया, कहा-''देवी! तुम बराबर जागती रहीं और भोजन तक नहीं किया। अब भोजन करो।''

''आपके भोजन किए बिना मैं कैसे खाती? और अब भोजन करने में क्या रुचि है?'' पत्नी ने कहा।

उस समय की दशा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। अपने दुष्कर्म की कहानी सुनाकर मैंने पत्नी से क्षमा-प्रार्थना की।

लेकिन वहाँ तो उसकी माता का उपदेश काम कर रहा था-''आप मेरे स्वामी हैं, यह सब सुनाकर मुझ पर पाप क्यों चढ़ाते हैं? मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मैं बराबर आपकी सेवा करूँ।'' उस रात बिना भोजन किए हम सो गए।

दूसरे दिन से मेरा जीवन ही बदल गया। छावनी के पारसी मद्य-विक्रेता का बिल बढ़ता ही जा रहा था। दो दिन में ही उसका तीन सौ रुपये का बिल आ पहुँचा। उस दिन दो रोज की मुहलत लेकर टाल दिया। मुझे चिन्ता तो थी ही, पत्नी ने भोजन कराते समय मेरी चिन्ता का कारण पूछा। अब तो हम परस्पर कोई बात छिपाकर नहीं रखते थे। मैंने सब कुछ साफ-साफ कह दिया।

पत्नी ने कुल्ला करवाकर हाथ मुँह धुलवाये और अपना भोजन करने से पहले ही अपने हाथ के कड़े उतार दिये। मैं चकित रह गया- ''देवी! यह कैसे हो सकता है? तुम्हें आभूषित करने के स्थान पर तुम्हें आभूषणों से रहित करने का पाप कैसे लूँ?''

उसी समय मुझे ज्ञान हुआ- ''**पतिव्रता पत्नी पति की स्वास्थ्य रक्षा के समय माता, विपत्ति के समय भगिनी और उसे सन्तान सुख पहुँचाने के लिए धर्मपत्नी का रूप धारण करती है।**''

धर्मपत्नी ने दूसरी जोड़ी दिखाकर कहा- ''एक जोड़ी पिताजी ने और दूसरी जोड़ी श्वसुर जी ने दी थी। इनमें एक जोड़ी व्यर्थ पड़ी है। यह सब मेरा है और तन-मन भी आपका है, तो इसके लेने में क्यों संकोच है? आपकी चिन्ता दूर करने का यह महँगा सौदा नहीं है।''

लालच से बचने के लिए मैंने कर्ज चुकाने के बाद बाकी रुपये पत्नी के बक्से में रख दिये और मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब कमाने लग जाऊँगा, तो खर्च किये हुए धन को फिर से आभूषणों में मिला दूँगा।

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करें कि जो जिस वर्ण का स्थान-प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने ओर समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें। (स. प्र. द्वि. स.)

नारी-शिक्षा व गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के पुरोधा स्वामी श्रद्धानन्द

वेदारीलाल आर्य

महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने प्रचलित शिक्षा प्रणाली के दोषों को उस समय देख लिया था, जिस समय वे किसी के सोच के दायरे में ही नहीं थे। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली हमारी मानसिक दासता का मुख्य एवं हमारे चरित्र की चूकों का प्रधान कारण है। आज इस दोष को लोग समझने लगे हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ने इन्हीं सब कारणों से वर्तमान शिक्षा पद्धति के विरुद्ध अपनी सम्मति प्रकट की थी। वे चाहते थे कि हमारी शिक्षा में मुख्य स्थान संस्कृत साहित्य और इतिहास व गौण स्थान अंग्रेजी को दिया जाय। यदि हम अंग्रेजी में पारंगत न हुए तो कोई बड़ी हानि नहीं, परन्तु संस्कृत में पारंगत न होने से तो हमारे सर्वनाश के दिन निकट आ रहे हैं। यही सब कारण थे जिनसे स्वामी जी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का पुनरुद्धार करना चाहते थे। स्वामी जी ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा, सदाचार और वेद के पठन-पाठन की प्रवृत्ति पर विशेष बल देते थे। वह चाहते थे कि ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना ईश्वर की प्राप्ति तो दूर मानव की बुद्धि एवं ज्ञान भी परिष्कृत और उज्ज्वल नहीं बन सकते हैं, उनका अविचल विश्वास था कि वेद और वैदिक धर्म के प्रचार से ही देश और जाति का कल्याण होगा।

स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने एवं सत्यार्थ प्रकाश के गहन अध्ययन के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द (मुंशीराम) ने नारी-शिक्षा और गुरुकुल-प्रणाली के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया। मुंशीराम को स्त्री-शिक्षा का विचार पहले से ही था और इसके लिये वह प्रयत्न भी कर रहे थे। उन्होंने अपनी कन्या पाठशाला खोलने का निश्चय किया। इस सन्दर्भ में आन्दोलन शुरु किया। इस आन्दोलन से उन्हें दूसरों का तो क्या स्वयं आर्यसमाजियों के बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। विरोध की सीमा यहाँ तक पहुँच गई कि इस संस्था को लेकर व्यक्तिगत आक्षेप भी होने लगे। मुंशीराम जी के संकल्प के बल पर सम्वत् १९४७ में यह पाठशाला खुल गई, जो वर्तमान में जालन्धर शहर के कन्या महाविद्यालय के नाम से सुविख्यात है।

मुंशीराम जी ने पत्नी शिवदेवी को सुशिक्षित बनाने का प्रयास किया, परन्तु उनका देहान्त हो जाने के कारण उन पर पुनर्विवाह के लिए बहुत दबाव डाला गया, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया और बच्चों के मातृत्व की स्वयं पूर्ति की। इसी मध्य सन् १९०१ में उन्होंने अपनी पुत्री अमृतकला का विवाह डॉ. सुखदेव जी के साथ जात-पाँत के बन्धन को तोड़कर किया। इससे आपको बिरादरी का काफी विरोध भी सहना पड़ा।

मुंशीराम जी पहले ऐंग्लो वैदिक कॉलिज से ही अन्य आर्य पुरुष के समान गुरुकुल के उद्देश्य की पूर्ति की आशा करते थे, परन्तु जब आशा निराशा बन गई तब आपने गुरुकुल के लिए आन्दोलन शुरु किया। इसके परिणामस्वरूप २६ नवम्बर के अधिवेशन में उन्होंने गुरुकुल की योजना तैयार कर पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा को सौंप दी। तथा अगस्त १८९८ में घोषणा कर दी कि जब तक ३० हजार रुपये एकत्र नहीं कर लेंगे तब तक घर में पैर नहीं रखेंगे। उस समय देश में अकाल फैला हुआ था। गुरुकुल की कल्पना भी लोगों के मस्तिष्क में नहीं थी। ऐसी विषम परिस्थिति में आपने लखनऊ से पेशावर और दक्षिण में मद्रास तक का दौरा कर अपने प्रण को पूरा किया। ८ अगस्त सन् १९०० तक ४० हजार रुपये एकत्र हो गये। लाहौर आर्यसमाज के एक अधिवेशन में मुंशीराम जी का अभिनन्दन किया गया। तब से ही वे महात्मा मुंशीराम के नाम से प्रसिद्ध हुए और इनके दल को आक्षेप में दिया गया नाम महात्मा दल सार्थक सिद्ध हुआ। गुरुकुल की प्रथम नियमावली में सांगोपांग वेद का अध्ययन, राष्ट्रीय शिक्षा, ब्रह्मचर्य, परीक्षा-पद्धति के दोषों से मुक्ति, माता-पिता से बढ़कर गुरु-शिष्य संबन्ध, निःशुल्क शिक्षा, प्राचीन भारत के इतिहास का अन्वेषण तथा शोध आदि अध्ययन के लिए गुरुकुल स्थापना के विषय बनाये गये। हिमालय की उपत्यका में मुंशी अमनसिंह द्वारा प्रदत्त काँगड़ी ग्राम में २१,२२,२३,२४ मार्च सन् १९०२ को गुरुकुल काँगड़ी का उद्घाटन हुआ था। वर्तमान में गुरुकुल काँगड़ी एक

सुविख्यात शिक्षा संस्था है। महात्मा मुंशीराम ने गुरुकुल का कार्य हाथ में लेते ही स्वमेध यज्ञ करना प्रारम्भ किया। यही कारण था कि प्रारम्भ से ही अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरुकुल को अर्पण कर दिया। सम्वत् १९५९ में अपना विशाल पुस्तकालय एवं सम्वत् १९६४ में सद्धर्म प्रचारक प्रेस को भी गुरुकुल को दान कर दिया। अब बच रही थी २० हजार लागत की जालन्धर की कोठी, इसे भी सम्वत् १९६८ में गुरुकुल को भेंट कर दिया। यह सब उन हालात में जब वे अपने निर्वाह के लिए गुरुकुल से कुछ भी नहीं लेते थे और सर पर ३६,०००/- रुपये का कर्ज भी था। महात्मा मुंशीराम ने अपने अथक परिश्रम से यह कर्ज भी उतार दिया। आपका स्वास्थ्य पहले से ही खराब था एवं गुरुकुल के लिये की गई मेहनत ने इसे और भी बिगाड़ दिया। प्रतिनिधि सभा में एक दल उनके विरोध में खड़ा हो गया, जिसने कई बार उन पर गबन तक के आक्षेप भी लगाये। जब उन्हें यह आभास होने लगा कि उनके संघर्ष से गुरुकुल की हानि होगी तो वे गुरुकुल से अलग हो गये। १२ अप्रैल १९१७ को मायापुर वाटिका कनखल में संन्यास आश्रम में प्रवेश किया और श्रद्धानन्द नाम रखा और पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा त्यागकर लोकसेवा के कार्य में संलग्न हो गये।

५८, हाता प्यारेलाल, नगरा, झाँसी

ईश्वर अवतार नहीं लेता

जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है उसके सामने कंस, रावणादि राक्षस एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक होने से उन कंस, रावणादि राक्षसों के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है।

भक्तजनों के उद्धार करने के लिए भी वह अवतार नहीं लेता क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। पृथिवी, सूर्यादि, जगत् की उत्पत्ति, धारण और प्रलय जो ईश्वर के बड़े कर्म हैं उनके सामने रावणादि का वध एक साधारण एवं नगण्य कर्म है।

परमात्मा के अनन्त सर्वव्यापक होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर वह गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? इसलिए परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता। राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दु:ख, सुख, जन्म, मरण आदि गुण मनुष्य के हैं, ईश्वर के नहीं। **(स.प्र.स. ७)**

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

नारी उत्पीड़न

मोहनलाल तँवर

महर्षि दयानन्द आपकी बहुत याद आ रही है। वैसे तो आप सदैव हमारे हृदय में विद्यमान हैं, परन्तु नारी की गरिमा को आज लुंज-पुंज किया जा रहा है तो आप बहुत याद आ रहे हैं। नारी-शक्ति को आपने जो विद्या पढ़ने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, अधिकारों के दायित्व निभाने में, नारी चेतना को लेकर जो शंखनाद किया उसकी स्मृति ताजा हो रही है। विलियम बैंटिक और राजाराममोहन राय ने तो सती-प्रथा के विरुद्ध कानून ही बनाये, परन्तु सती-प्रथा के मूल में जिन विधवाओं का नाश हो रहा था, उनको जलाया जाता था। उनको देवदासियाँ बनाकर दुष्ट पण्डों को समर्पित किया जाता था। उनको गंजा बनाकर एक-दो गज की साड़ी का टुकड़ा देकर गायों के गोठड़े में एक टाट के टुकड़े पर डालकर चावल का केवल माण्ड दिया जाता था, उनको भीख माँगने के लिए वृन्दावन की गन्दी गलियों में धकेल दिया जाता था, इन पापों के विरुद्ध जो आपका सबसे साहस भरा कदम था वह **विधवा विवाह** था, जिसके करने से औरत पुन: सधवा होकर इन शारीरिक व मानसिक उत्पीड़नों से मुक्ति प्राप्त करती थी। इन तथाकथित पीठाधीशों ने उनके धर्मशास्त्र को पढ़ने के अधिकार तक छीन लिए थे।

यद्यपि आर्यसमाज मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करता, परन्तु नारी के हर अधिकार के लिए वह पैरोकारी करता है। केरल राज्य में सबरीमाला स्थित मन्दिर में भगवान् अयप्पा का मन्दिर है, जहाँ पर कहते हैं कि १० वर्ष से ऊपर व ५० वर्ष से नीचे की नारियों का प्रवेश वर्जित है। कहते हैं भगवान् अयप्पा ब्रह्मचारी थे अत: उक्त आयु के अन्तर्गत रजस्वला होने वाली नारियाँ उनके दर्शन नहीं कर सकतीं। वहाँ के जड़मति पुजारी एवं अन्धविश्वासी लोग यह नहीं जानते कि रजस्वला होना या नहीं होना औरत के हाथ में नहीं है, यह प्रकृति की नैसर्गिक क्रिया है तथा भगवान् अयप्पा की माता जी भी तभी गर्भवती हुई होगी, जिस समय उसके रजस्वला होने की आयु थी क्योंकि रजोनिवृत्ति वाली आयु की औरतों के औलाद होती ही नहीं है। भगवान् अयप्पा को उसने रजस्वला होने के बाद भी गोद में खिलाया होगा, दूध पिलाया होगा। इस भगवान् की माँ रजस्वला के रूप में उसको पूर्ण वात्सल्य प्रदान करती थी तो वर्तमान में आस्थावान् युवा नारियों का उनके प्रति प्रेम-श्रद्धा-भक्ति रखना पाप कैसे हो सकता है। ब्रह्मचारी तो हनुमान भी थे, परन्तु माता सीता एवं अन्य अयोध्या की रानी महारानियाँ उन पर सदैव आस्था रखतीं थीं आज भी लाखों की संख्या में नारियाँ हनुमान मन्दिर जाकर पूजा-अर्चना करती हैं, क्या हनुमान जी को हम पतित देवता मानते हैं। ब्रह्मचारी भीष्म के आस-पास द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी आदि युवतियाँ रहती थीं तो क्या भीष्म का धर्मभ्रष्ट हो गया?

दीपक मिश्र की अध्यक्षता वाली सुप्रीम कोर्ट की ५ सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने २८ सितम्बर २०१८ को अपने फैसले में १० से ५० साल की महिलाओं के रोक की सदियों पुरानी प्रथा को रद्द कर दिया और अपने निर्णय में प्रत्येक उम्र की महिलाओं के प्रवेश तथा सार्वजनिक पूजास्थल (प्रवेश के अधिकार) नियम १९६५ के प्रावधान धर्मपरायण हिन्दु महिलाओं के ये अधिकार हैं कि उनकी पूजा पर कोई रुढ़िवादी लोग आक्रमण नहीं करे, परन्तु इन ५ जजों की पीठ में एक महिला जज इन्दु मल्होत्रा ने उक्त फैसले पर असहमति प्रकट की अर्थात् नारी ही नारी की शत्रु बन गई। पहिले भी हाईकोर्ट केरल ने अपने फैसले में मुख्य पुजारी को ही सर्वेसर्वा मानकर नारी जाति के मन्दिर प्रवेश को अनुचित बताया था। इन्दु मल्होत्रा ने तो कहा कि सती प्रथा को छोड़कर कोर्ट किसी भी परम्परा पर पाबन्दी नहीं लगा सकता।

नारी जाति का अपमान करने वाले तथाकथित सनातनी इस गन्दी प्रथा के विरुद्ध क्यों नहीं बोलते, क्योंकि उनके भगवान् विष्णु लक्ष्मी के बिना, ब्रह्मा सरस्वती के बिना, शिव-पार्वती के बिना, राम-सीता के बिना कृष्ण-रुक्मणी के बिना अधूरे हैं। अर्धनारीश्वर की पूजा करने वाले इस भेदभाव पूर्ण पाखण्ड को समाप्त करने को कमर नहीं

कसते। अगर सती प्रथा ही इन्दु जी की नजरों में गलत परम्परा है तथा अन्य ढोंग स्वस्थ परम्परा हैं तो इनको काली के सामने नरबलि, स्त्रियों की पवित्रता जाँचने हेतु अग्नि-परीक्षा, बाल-विवाह, रजस्वला कुमारी पुत्री का मुँह देख ले तो बाप घोर नर्क में जाय, नारी नर्क का द्वार इत्यादि प्राचीन रीति-रिवाजों की भी रक्षा करनी चाहिए, केवल सबरीमाला के नारी की गरिमा को गिराने वाले नियम की ही क्यों वकालत कर रही हैं। बहुत-सी नारियाँ तो १० वर्ष पूर्व व ५० वर्ष बाद भी रजस्वला हो सकती है, फिर यह उम्र का मापदण्ड क्यों?

यहाँ वोट की भिखारी राजनीति भी इस फैसले के विरुद्ध आन्दोलनकारियों का साथ दे रही है। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ वाली भा.ज.पा. इनका साथ इसलिए दे रही है क्योंकि केरल के ४ राज्यों में ४० लोकसभा सीटों पर लाखों अयप्पा भक्त निर्णायक हैं। भाजपा नेता मुरलीधरन, भाजपा अध्यक्ष श्रीधरन पिल्लै भी इन्दु मल्होत्रा के पक्ष में हैं तथा कांग्रेस भी अपनी इस फैसले के विपक्ष में नीति-निर्धारण कर रही है।

यह नौरात्र मनानेवाली, नवदुर्गाओं की पूजा-उपासना करने वाली हिन्दू जाति क्यों नहीं इन मातृशक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने को संगठित होती। यह कुप्रथा हिन्दुओं व मुसलमानों में समान रूप से आज भी है-

मुसलमान

१. नवम्बर १६ से पहिले १५ वीं सदी की मस्जिद हाजी अली मुम्बई में भी स्त्रियों को प्रवेश की इजाजत नहीं थी।
२. १४ वीं सदी की दिल्ली स्थित निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह में औरतें एक दीवार से आगे नहीं जा सकतीं न गुलाब की पंखुड़ी डाल सकती हैं।
३. दिल्ली स्थित जामा मस्जिद में महिलाओं को सूर्यास्त के बाद जाने की इजाजत नहीं।

जैन

१. गुना, मध्यप्रदेश में औरतें जा तो सकती हैं, परन्तु पहनावा पुजारियों के अनुसार होना चाहिये।
२. जैसलमेर के एक जैन मन्दिर में रजस्वला स्त्रियों का प्रवेश निषेध है।

हिन्दू

१. तिरुवनंतपुरम् स्थित श्री पद्मनाभ मन्दिर में स्त्रियाँ चूड़ीदार पजामा व आधी बाँह का कुर्ता पहन कर नहीं जा सकतीं।
२. नासिक के त्र्यंबकेश्वर मन्दिर के गर्भगृह में स्त्रियों को जाने की अनुमति नहीं थी, परन्तु कोर्ट के आदेशानुसार अब जाती हैं।
३. कोल्हापुर के महालक्ष्मी मन्दिर के गर्भगृह में स्त्रियाँ कोर्ट के आदेशों के बाद ही जा सकी हैं।
४. पुष्कर के भगवान् कार्तिकेय के ब्रह्मचारी रूप की पूजा होती है। स्त्री वहाँ जाये तो भगवान् श्राप दे देते हैं।
५. फटबाउसीसत्र असम के मन्दिर में भी रजस्वला स्त्रियों का प्रवेश प्रतिबन्धित है यहाँ पर भी कोर्ट के आदेशों के बाद ही औरतों को प्रवेश करने देते हैं।

हम आर्यसमाजी उनके मन्दिरों में जाने की वकालत नहीं करते क्योंकि हम पाषाणों को भगवान् मानते ही नहीं, परन्तु हम महर्षि दयानन्द के अनुयायी हैं तथा महर्षि स्त्री-जाति के अधिकारों के पूर्ण पक्षधर थे अत: हमें नारी जाति की गरिमाओं को ध्यान में रखते हुए प्रगतिशील, संघर्षरत शक्तियों का साथ तो देना ही चाहिये, बेशक वे आर्यसमाजी हों अथवा न हों।

ई-२०७, शास्त्रीनगर, अजमेर। ०१४५-२४२५२८६

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

सुकूँ से मर सकें इक दिन
पं. भारतेन्द्र नाथ (महात्मा वेदभिक्षु)

सोमेश पाठक

"मेरे प्यारे बच्चे, जानते हो तुम किस पिता के पुत्र हो? जिसने मृत्युपर्यन्त चापलूस समाज का मुँह तोड़ा है। जिसने सदैव ही दुरभिमानी जनों के अहंकार को अपनी शक्तियों से कुचला है। प्यारे, मुझे आशा है कि उसी वीर पिता के पुत्र होकर तुम उन्हीं की भाँति सिद्धान्तों के लिये मर मिटने वाले साबित होगे।"

ये पंक्तियाँ अमर क्रान्तिकारिणी, भारत की पहली महिला ऑनेररी मजिस्ट्रेट, वीरमाता विद्यावती शारदा की हैं, जो कि उन्होंने अपने पाँच वर्ष पाँच माह के पुत्र को गुरुकुल झेलम भेजते समय पत्र में लिखकर दी थीं। इन पंक्तियों में जिस वीर पिता की चर्चा है वो प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पं. गयाप्रसाद शुक्ल हैं, जिन्हें एक क्रान्तिकारी षड्यन्त्र में गिरफ्तार किया गया था और ब्रिटिश सरकार द्वारा भयंकर यातनायें दी गयीं थी। कहते हैं कि उनको लगातार ४८ घण्टे तक पीटा गया और अन्ततोगत्वा केवल ३२ वर्ष की उम्र में ही मृत्यु हो गयी थी। हमारे चरित्र नायक को इस क्रान्तिकारी दम्पती का पुत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है।

पं. भारतेन्द्रनाथ का जन्म बीघापुर जिला-उन्नाव (उ.प्र.) में १४ मार्च १९२८ ई. को हुआ था। ऊपर कही पंक्तियों से इतना तो निश्चित ही है कि क्रान्तिकारी सोच तो उन्हें विरासत में ही मिली थी। जिसका प्रमाण उनका सम्पूर्ण जीवन है। **घर फूँक तमाशा देखने वाले पं. भारतेन्द्रनाथ ने देश, जाति, दयानन्द, आर्यसमाज और वेद के अलावा कभी और कुछ सोचा ही नहीं** और सोचते भी भला कैसे? माँ का आदेश और पिता का खून इतना सस्ता थोड़े ही था। वे बोलते थे तो सभायें मौन हो जाती थीं। वे लिखते थे तो कलम आग उगलती थी। जो कविता करने लगें तो कठोर से कठोर हृदय भी द्रवित हो जाये। पर अफसोस! ऐसी प्रतिभा के साथ इतिहासज्ञ न्याय न कर सके। जिसके जीवन का एक-एक पल प्रेरणादायक है उसकी जीवनी आज तक न लिखी गयी। जिसकी कोटि का कवि आज आर्यसमाज में ढूँढे से भी न मिलेगा उसका एक भी काव्य संग्रह आज तक छापा न गया। जिसकी सम्पादन कला के पीछे-पीछे चलकर अनेकों सम्पादक बन गये। आज सम्पादकों की पंक्ति में उसका नाम तक नहीं आता। खैर! यह आर्यसमाज के लिये कोई नई बात नहीं। अनेकों प्रतिभायें आर्यसमाज में ऐसी आयीं जो अगर चाहतीं तो आर्यसमाज से हटकर साहित्यकारों की शीर्षस्थ पंक्ति में बैठ सकती थीं, तथापि उन्होंने अपना जीवन आर्यसमाज के लिये लगाना उचित समझा और अपना सर्वस्व लुटा दिया। यथा- पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. गणपति शर्मा, पं. चमूपति एम.ए., पं. तिलोक चन्द्र 'महरूम', महाकवि जैमिनी 'सरशार', महाकवि दुर्गासहाय 'सरूर' आदि अनेक नाम हैं जिनका उल्लेख विषय को विस्तृत कर देगा। इन्हीं उत्कृष्ट साहित्यकारों की पंक्ति में पं. भारतेन्द्रनाथ का नाम भी उल्लेखनीय है।

पण्डित जी का अध्ययन गुरुकुल झेलम में हुआ था। उस समय गुरुकुल झेलम के आचार्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी (उस समय आचार्य रामदेव जी) हुआ करते थे। पण्डित जी में प्रतिभा जन्मजात थी। महज १४ वर्ष की आयु में (सन् १९४२) हस्तलिखित अखबार निकाल दिया था। जिसका नाम था 'स्वराज'। जिसकी कार्बन कॉपियाँ वितरित की जातीं थीं। इन दिनों पण्डित जी अंग्रेजी में भी कविता किया करते थे। यह पत्र और पण्डित जी बहुत जल्द ही ब्रिटिश शासन की आँखों में खटकने लगे थे। इस कारण जब पुलिस उन्हें परेशान करने लगी तो स्वामी योगेश्वरानन्द जी के आश्रम में भूमिगत भी रहना पड़ा था। इस प्रकार अनेक कष्टों को झेला पर पिता के पदचिह्नों से हटना गवारा न था। **क्रान्ति ने केवल पीढ़ी बदली थी अपना स्वत्व नहीं।** क्रान्तिकारी पं. गयाप्रसाद शुक्ल अब भी जिन्दा थे और वो भी अपने ही खून के किसी अंश में। स्वतन्त्रता-संग्राम में पं. भारतेन्द्रनाथ ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और अन्ततोगत्वा देश आजाद हुआ। इन्हीं दिनों

उनकी पत्रकारिता की योग्यता को देखते हुये बम्बई आदि बड़े शहरों से उन्हें नियुक्ति पत्र प्राप्त होने लगे। पर यह दयानन्द का सेनानी नौकरी करने के लिये थोड़े ही बना था। उसका ध्येय तो दुनियां में वेद की प्रतिष्ठा करना था। आर्यसमाज के लिये जीना था और आर्यसमाज के लिये मरना था।

''हम वो नहीं जो जिन्दगी यूँ ही गुजार दें।
सुकूँ से मर सकें इक दिन कि ऐसा ख्याल भी तो है''

नौकरी भी की तो ऋषि दयानन्द के मिशन की की। पंजाब प्रतिनिधि सभा के पत्र **'आर्य'** का सम्पादन किया, इसके बाद आर्यमित्र तथा 'आर्योदय' आदि का सम्पादन किया। संस्थाओं की नौकरी पण्डित जी को रास न आयी। पण्डित जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। संभवत: वह जो करना चाहते थे संस्थायें उसका भार सहन करने में सक्षम न थीं। अत: उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का निश्चय किया। इस कार्य में उनका सहयोग किया आर्यजगत् के मूर्धन्य विद्वान् और संन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी ने। स्वामी जी ने पण्डित जी को १०१ रुपये दिये और कहा जाओ अपना काम शुरु कर दो। काम शुरु हुआ और ऐसा शुरु हुआ कि फिर थमा ही नहीं। जिधर देखो उधर पं. भारतेन्द्रनाथ जी के प्रकाशन का जलजला था। पण्डित जी जंगल में भी खड़े होकर यह कहा करते थे कि अगर कहीं ओ३म् का झण्डा लगा है और वहाँ मेरे प्रकाशन की पुस्तक नहीं है तो धिक्कार है मुझ पर और मेरे प्रकाशन पर। उन्होंने अपने प्रकाशन का नाम 'जनज्ञान' प्रकाशन रखा। इसी नाम की एक मासिक पत्रिका भी उन्होंने प्रकाशित की। जिसकी फाइलें आज आर्यसमाज के लिये धरोहर हैं। प्रकाशन के क्षेत्र में जो मानदण्ड पं. भारतेन्द्रनाथ ने स्थापित किया वह महाशय राजपाल जी की परम्परा को जीवित रखने वाला है। उन्होंने हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत तीनों भाषाओं की पुस्तकें प्रकाशित कीं। वे जानते थे कि कौन सी पुस्तक कितनी उपयोगी है? अत: उनके द्वारा प्रकाशित साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्य की कोटि में आता है। आर्यसमाज के पुस्तकालय में अनेक ऐसी समृद्ध पुस्तकें हैं जो केवल और केवल पं. भारतेन्द्रनाथ जी के पुरुषार्थ की वजह से जीवित हैं। यथा- A Critical Study of Philosophy of Dayanand, Ten Commandments of the Arya Samaj, The Glimpses of Dayanand, Inside Congress, The History of Assassins आदि अनेक पुस्तकें हैं।

खेद है कि हम आज अधिकतर ऐसे साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं कि जिस पर आने वाले समय के बुद्धिजीवी एक दृष्टि तक डालना पसन्द नहीं करेंगे और साथ ही हमारा दिग्गज साहित्य (जो कि आर्यसमाज की सम्पत्ति और गौरव है) हमसे दूर होता जा रहा है। एक वो समय था जब महान् दार्शनिकों की पुस्तकों की मूल प्रतियाँ पैसे के अभाव में दीमकों का भोजन बन गयीं। एक आज का समय है जब आर्यसमाज के उपदेशक अपनी पर्सनैलिटी डेवलप्ड करने में ही करोड़ों रुपये खर्च करते हैं। अभी समय है कि हम संभल सकें वरना फिर ईश्वर तो मालिक है ही। खैर!

पं. भारतेन्द्रनाथ का स्वप्न था कि वे जन-जन तक वेद पहुँचाना चाहते थे। उन्होंने चारों वेदों का हिन्दी भाष्य छपवाने की प्रतिज्ञा की और प्रतिज्ञा के पूर्ण होने तक अन्न, नमक और मीठा त्याग दिया। उन्होंने दो वर्ष में अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई और आर्यसमाज के इतिहास में वो काम कर दिखाया जो अब तक किसी ने नहीं किया था। महज ३५ रुपये में चारों वेदों का हिन्दी भाष्य जन-जन के लिये उपलब्ध करा दिया। यह उनके ही पुरुषार्थ का फल था कि लाखों घरों तक ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य पहुँचा। पर यह दयानन्द का दीवाना अपनी बड़ी हानि कर बैठा। दो वर्ष तक अन्न, नमक, मीठा न खाने से उन्हें लीवर का रोग हो गया और अन्त में यही उनकी मृत्यु का कारण बना।

अपने इतने कार्य से भी उन्हें सन्तोष न हुआ तो उन्होंने दयानन्द संस्थान की स्थापना की, जो कि दिल्ली के इब्राहिमपुर में आज भी है। उनके अन्दर हिन्दू रक्षा को लेकर बहुत तड़प थी। वे अपने देश के युवा को भटकते हुये और नष्ट होते हुये नहीं देख सकते थे। उनकी कविताओं में यह आग आज भी झलकती है। जब उनसे हिन्दुओं के पतन का हाल न देखा गया तो सन् १९८० में अखिल भारतीय हिन्दू रक्षा समिति का गठन कर दिया। वर्षों से

प्रताड़ित हो रही हिन्दू जाति में प्राण फूँक दिये। देश भर के युवा आपसे जुड़ने लगे।

अपने देश-जाति और संस्कृति से उन्हें इतना प्रेम था कि वे उसकी रक्षा के लिये अपने प्राण भी दे सकते थे। वेद में उनकी इतनी निष्ठा थी कि जैसे ही उन्होंने अपने जीवन के ५१ वें वर्ष में प्रवेश लिया तो आर्यजगत् के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से वानप्रस्थ की दीक्षा ली तथा अपना नाम भी 'वेदभिक्षु' रखा। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने आपको 'महात्मा वेदभिक्षु' के नाम से पुकारा और आपका यही नाम प्रसिद्ध हुआ।

पं. भारतेन्द्रनाथ जी का विवाह सन् १९५० ई. में श्रीमती राकेशरानी जी से हुआ। जिन्होंने जीवन भर उनके कार्यों में कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग किया तथा उनकी मृत्यु के बाद भी पण्डित जी के संस्थान को जीवित रखने का प्रयास किया। पण्डित जी को सन्तान के रूप में पाँच पुत्रियाँ प्राप्त हुयीं। जिनके नाम क्रमशः ज्योत्स्ना, सुमेधा, आभा, ऋचा और दिव्या हैं। आर्यसमाज के दिग्गज विद्वान् परोपकारिणी सभा के (पूर्व प्रधान) डॉ. धर्मवीर पण्डित जी के बड़े दामाद थे। नोबल शान्ति पुरस्कार प्राप्त करने वाले श्री कैलाश सत्यार्थी पण्डित जी के दूसरे नम्बर के दामाद हैं।

जैसा कि हम पूर्व में लिख आये हैं कि पण्डित जी ने दो वर्ष तक अन्न, नमक और मीठा छोड़ दिया था इसलिये उन्हें लीवर (सिरोसिस ऑफ लिवर) का रोग हो गया। यह रोग लगभग ४ वर्ष तक उनके पीछे लगा रहा और अन्त में उनकी जान लेकर ही उनसे दूर हुआ। ५ दिसम्बर १९८३ की रात को दिल्ली के पंत हॉस्पिटल में उन्हें भर्ती कराया गया और २१ दिसम्बर १९८३ की भोर में यह जग को जगाने वाला क्रान्तिकारी खून खुद सदैव के लिये सो गया। धन्य हैं माता विद्यावती शारदा और धन्य हैं उनके वे शब्द जो उन्होंने अपने साढ़े पाँच साल के बच्चे को कहे थे।

ऋषि उद्यान, अजमेर। ८४४१०४३४४२

अपील

'सत्यार्थप्रकाश' जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक के प्रति किस आर्य की श्रद्धा नहीं होगी और कौन वैदिकधर्मी यह नहीं चाहेगा कि यह पुस्तक हर मनुष्य के हाथ में होनी चाहिये? आर्यों की इस तीव्र अभिलाषा को परोपकारिणी सभा गत ५ वर्षों से साकार रूप देने में प्रयासरत है। साथ में यह भी चाहती है कि यह अमूल्य पुस्तक आकार-प्रकार में भी आकर्षक ही हो। इन सबको ध्यान में रखकर सभा ने विश्व पुस्तक मेले में इसे ऐसे व्यक्तियों में वितरित करने का निश्चय किया जिन तक यह अभी नहीं पहुँच पाई थी। इस कार्य में परोपकारिणी सभा तो एक माध्यम मात्र है, मुख्य वितरक आर्यजन ही हैं। विश्व पुस्तक मेला- २०१९ का कुछ ही समय शेष है। अत: आर्यों से अपील है कि अधिक से अधिक लोगों तक सत्यार्थ पहुँचे, इसके लिये मुक्त हस्त से सहयोग करें। सत्यार्थप्रकाश के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र भी नि:शुल्क वितरित किया जायेगा। आप जितनी प्रतियाँ अपनी ओर से बंटवाना चाहें, उतनीं पुस्तकों पर आपका नाम छापा जायेगा।

एक प्रति की लागत- १००रु.

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

ऋषि मेला २०१८ में प्रथम दिवस के द्वितीय सत्र की झलकियाँ

महिला उत्थान और आर्यसमाज

म्याँमार से पधारे अतिथि

डॉ. प्रियंवदा 'वेदभारती', नजीबाबाद

श्री विमल कुमार एडवोकेट, हरदोई

गुरुकुल शिवगंज की छात्राएँ

ऋषि मेले के अवसर पर वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता

निर्णायक विद्वद्गण (बाएँ से) 1. आचार्य ज्ञानेन्द्र आर्य, हरिद्वार 2. आचार्य विद्यादेव, अजमेर 3. आचार्य ओमप्रकाश, गुरुकुल आबू

वेद कण्ठस्थीकरण के प्रतिभागी विद्यार्थी

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक प्रेषण : १५-१६ दिसम्बर २०१८ आर.एन.आई. ३९५९/५९

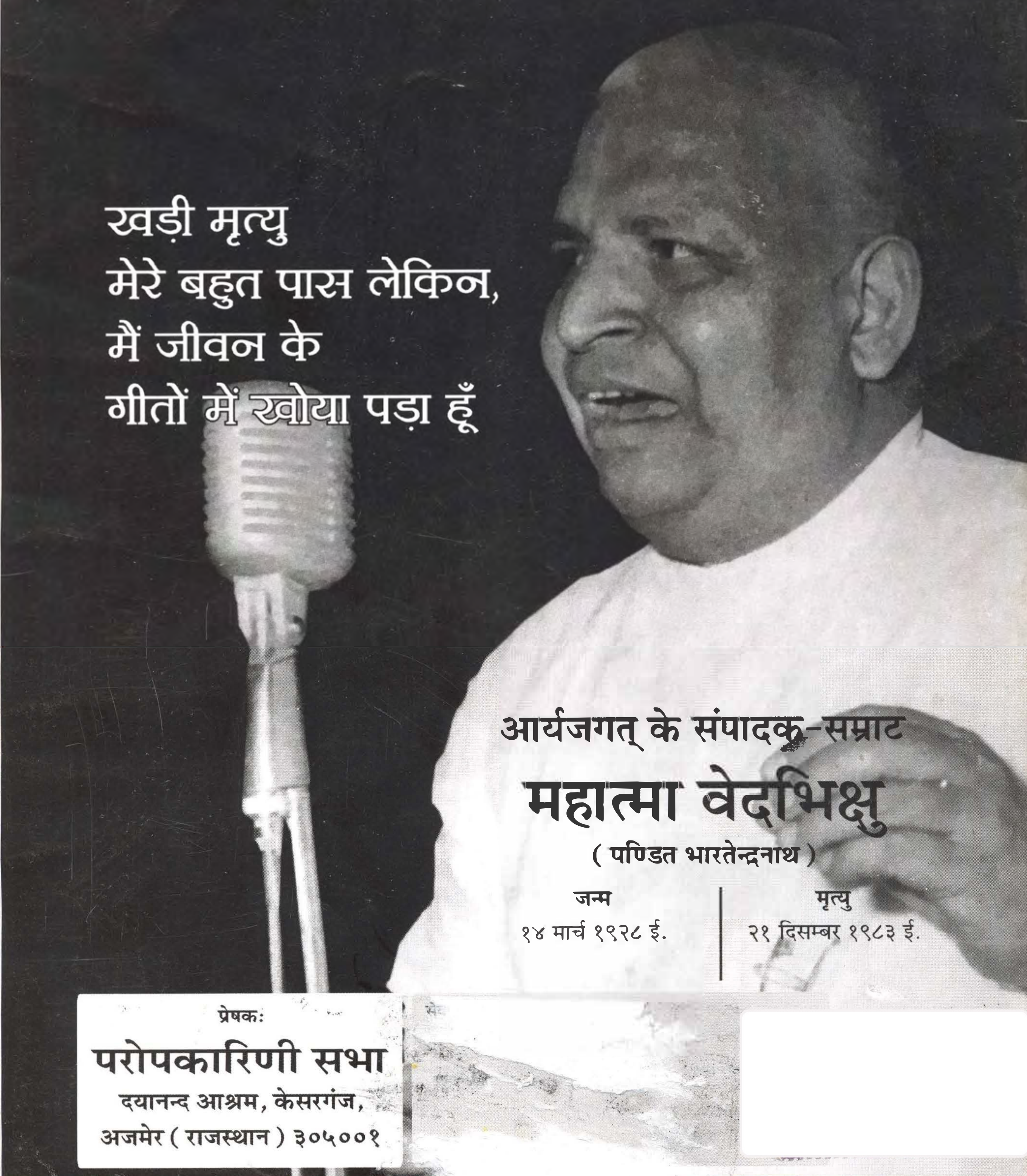

खड़ी मृत्यु
मेरे बहुत पास लेकिन,
मैं जीवन के
गीतों में खोया पड़ा हूँ

आर्यजगत् के संपादक-सम्राट

महात्मा वेदभिक्षु

(पण्डित भारतेन्द्रनाथ)

जन्म	मृत्यु
१४ मार्च १९२८ ई.	२१ दिसम्बर १९८३ ई.

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१